॥ वन्दे श्री गुरु तारणम् ॥

तारण जिनवाणी संग्रह

दैनिक पूजायें, नित्योपयोगी पाठ, श्रावकाचार, बत्तीसी ग्रंथ,
आरती भजन, फूलना एवं विविध पदों-गीतों का
अपूर्व-संग्रह

भाद्रपद, वीर नि० सं० २५००

भावप्रधान क्रिया

श्रवण दर्श पूजन भी मैंने, यदि हो किसी समय कीना।
तो भी सच्ची भक्ति-भाव से, नहीं तुम्हें चित में दीना॥

इस ही कारण हे, जग-बांधव ! दुखभाजन मैं हुआ अभी।
भाव रहित जो क्रिया कोई भी, नहिं होती है फलित कभी॥

पण्डित दौलतराम जी कृत छहढाला, बुधजन कृत छहढाला, सामायिक पाठ भाषा, महावीराष्टक, भक्तामरस्तोत्र, विषापहारस्तोत्र, निर्वाण काण्ड, आलोचना पाठ, बाइस परीषह पाठ, मुनिराज का बारह मासा, राजुल का, सीता जी का बारह मासा, चौबीस दण्डक, तत्वार्थसूत्र आदि उपयोगी सामग्री भी इसमे सकलित की गई है। सबके उपयोग में आ सके इस दृष्टि से तारण जिनवाणी सग्रह का संकलन हुआ है, इसमें सन्देह नही।

तारण स्वामी के ग्रन्थो मे से तीनों बत्तीसी, श्रावकाचार की चौदह मगल गाथाएं भी इसमे दी गई है।

कई वर्ष पूर्व मैंने विदिशा के बड़े मन्दिर के प्रतिमालेखों और यन्त्र-लेखो का संकलन किया था। यन्त्रों मे मैंने एक ऐसा यन्त्र भी देखा था जिसकी प्रतिष्ठा किसी तारण भाई ने कराई है। ठिकानेसार की तीनों प्रतियों मे भी सिद्ध यन्त्रादि की चर्चा आई है। प्रस्तुत सग्रह मे भी अनेक यन्त्रो का उल्लेख दृष्टिगोचर होता है।

मुझे प्रसन्नता है कि यह संग्रह ग्रन्थ सर्वोपयोगी बने, इस दृष्टि से इसमे सामग्री का संकलन किया गया है। पूरे समाज में इसका स्वागत होगा, ऐसी मुझे आशा है।

श्री सन्मति जैन निकेतन,
नरिया, वाराणसी-५
श्रुतपंचमी, वीर स० २५००

卐

फूलचन्द्र शास्त्री.

तारण साहित्य का उज्ज्वल भविष्य

यह जिनवाणी संग्रह दूसरी बार प्रकाशित हो रहा है। पहलीबार पं० चम्पालाल जी सोहागपुर ने अत्यन्त परिश्रम करके सम्पादन किया, और प्रकाशित कराया था। पं० चम्पालाल जी तारण-समाज में एक ही ऐसे व्यक्ति हैं जो आचार्यों, विद्वानों, कवियों और लेखकों की वाणी से चुन चुन कर "सूक्ति-मुक्ताओं" का संग्रह करते हैं। उनकी कई अलमारियाँ ऐसी नोट-बुकों से भरी हैं। पं० जी से निवेदन है कि आपके इस विशाल भंडार को आप खोलें और तारण-साहित्य को इस मुक्तावली से विभूषित करें। अस्तु।

जिनवाणी—संग्रह का प्रकाशन श्रीमान् समाजभूषण श्रीमन्त सेठ भगवानदास शोभालाल जी सागर वालों की ओर से हो रहा है। इसी प्रकार ज्ञानसमुच्चय सार का प्रकाशन भी धुरंधर विद्वानों की लेखनी से सुसज्जित होकर प्रकाशित हो रहा है। तथा श्रीमन्त सेठ सा० के प्रयत्नों से जो साहित्यिक चहुँमुखी वातावरण बन रहा है, उससे ऐसा आभास मिलता है कि अब तारण-समाज और साहित्य का भविष्य उज्ज्वल है।

श्री गुरु महाराज से प्रार्थना है कि श्रीमन्त सा० तथा समाज की मनोकामनाओं की पूर्ति शीघ्र हो, और यह समाज उन्नत समाजों की पंक्ति में खड़ी हो, ऐसा अवसर देखने को मिले। विशेष शुभम्।

श्री निसई जी
(मल्हारगढ़)

धर्मानुरागी—
ब्र० गुलाबचन्द.

हमारी सद्भावना

श्रावक को धर्म-साधन करने के लिये दैनिक पाठ, पूजन एवं स्वाध्याय हेतु जो सामग्री आवश्यक है, उसका संकलन इस जिनवाणी संग्रह में किया गया है। गृहस्थ-धर्म के देव-पूजा, गुरु-भक्ति, स्वाध्याय, संयम, तप और दान, ये छह आवश्यक या षट् कर्म हैं। इनकी साधना-निमित्त, ज्ञान-सामग्री सव इस संग्रह में है। धर्मार्थी साधर्मी-बन्धुओ को धर्मलाभ हो, इस हेतु यह संग्रह प्रकाशित किया जा रहा है।

हम इसके संग्रह-कर्ता, मुद्रणकर्ता, एवं प्रकाशनकार्य मे सहयोगी सभी सज्जनों का आभार मानते हैं। और आशा करते हैं कि सभी के परिश्रम को सफल वनाने के लिये इस संग्रह का सदुपयोग हो।

हमारी भावना है कि प्रत्येक भव्य प्राणी वाह्य व्यवहार, पठन-पाठन और समस्त वाह्य क्रियाओं को करते हुये भी लक्ष्य में अपने "पूर्ण शुद्ध-स्वरूप" को रखे, तथा हमेशा स्व-सन्मुख रहने का प्रयत्न करें। अपने "ध्रुव-तत्व" को कभी न भूलें। एवमस्तु।

सागर,
(म० प्र०)

सर्व शुभेच्छुक—
भगवानदास शोभालाल जैन.

"जिनवाणी-संग्रह" का यह द्वितीय संस्करण है। अबकी बार इस संग्रह का प्रकाशन श्रीमान् श्रीमन्त स० सि० सेठ भगवानदास शोभालाल जी एवं उनके धर्मस्नेही सम्पूर्ण परिवार की ओर से हो रहा है। तथा जिनकी "पुण्य स्मृति" में यह प्रकाशन हो रहा है, वे हैं स्वर्गीय स० सि० श्रीमन्त सेठ मोहनलाल जी तथा उनकी धर्मपत्नी स्व० राज रानी बहू।

मैं उस समय सागर में अध्ययन करता था। प्रतिदिन श्री चैत्यालय जी में जो पूजन, स्वाध्यायादि का क्रम चलता था, उसके प्रमुख संचालकों में श्रीमन्त सेठ मोहनलाल जी थे। षट् कर्म जो कि श्रावक के मूल कर्तव्य हैं उनका शिक्षा-अभ्यास मुझे उनके ही द्वारा प्राप्त हुआ था। जिनवाणी संग्रह में जो भी सामग्री आप देख रहे हैं उसका पूरा-पूरा उपयोग पूजन और स्वाध्याय में सेठ सा० के द्वारा होता था।

इस संग्रह का परिवर्द्धित-रूप संपादन-संशोधन "धर्म-दिवाकर" स्वर्गीय श्री ब्रह्मचारी सुमेरचन्द्र जी महाराज के द्वारा हुआ है। श्री महाराज जी ने समाज का सर्वांग अध्ययन करके भिन्न-भिन्न परिस्थिति का ध्यान करते हुये हिन्दी, संस्कृत और प्राकृत पाठों का इसमें समावेश किया है।

[illegible] की [illegible] का कारण है, किन्तु [illegible] का [illegible] आत्मकल्याण [illegible] प्राप्त होता है, और प्राप्त भी हो तो [illegible] से अधिक रहता नहीं, और [illegible] से [illegible] का [illegible] ही [illegible] है। [illegible] है।

[illegible] भूमिका के अनुसार, और इस [illegible] में भी [illegible], [illegible] बनाने के लिये पूजनादि कुछ [illegible] का विविध पूजन, पाठ, स्तुति आदि

की अत्यन्त आवश्यकता है। क्योंकि अल्प ज्ञानियों को बिना शास्त्र, योगी और पुस्तको के शुभोपयोग भी नही हो सकता, शुद्धोपयोग तो बिना श्रुतज्ञान के होगा ही कैसे ?

इस प्रकरण से यह सिद्ध होता है कि धर्म-साधना के लिये उस जिनवाणी संगह की प्रत्येक धार्मिक व्यक्ति को आवश्यकता है। इसी आवश्यकता की पूर्ति को ध्यान मे रखते हुये इस जिनवाणी सगह का प्रकाशन समाज भूषण-परिवार की ओर से हुआ है। समाज के प्रत्येक धर्मप्रेमी से निवेदन है कि जिस भाव से पुस्तक का प्रकाशन हो रहा है उसी भाव से इसका उपयोग भी आप करे।

हम इस महान ज्ञानदान के उपलक्ष्य में "श्रीमन्त-परिवार" की सराहना पूर्वक अनुमोहना करते है और श्री गुरु महाराज से प्रार्थना करते हैं कि आपके भावों मे उत्तरोत्तर इसी प्रकार वृद्धि होती रहे।

इस सग्रह के लिये बनारस के सिद्धान्ताचार्य श्रीमान् प० फूलचन्द जी सिद्धान्त शास्त्री महोदय ने अपनी शुभ कामना-स्वरूप-सत्कृपा से "आद्य वक्तव्य" लिखकर अनुगृहीत किया है, इसके लिये हम प० जी सा० के आभारी है।

सिंगोड़ी
(छिन्दवाडा)
म० प्र०

निवेदक—
नयकुमार.

तारण जिनवाणी संग्रह

विषय-सूची

लाख कुलकोडि पिता पक्षे, पर्याप्त, निवृत्यपर्याप्त, लब्ध्यपर्याप्त मे जो कोई जीव की विराधना करी होय, तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥ तथा रागद्वेष कर पाप लागो होय तस्स मिच्छामि दुक्कडं । त्रिदंड, त्रिशल्य, त्रिगारव करीने पाप लागो होय, तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥ राजकथा, चोरकथा, स्त्रीकथा, भोजनकथा करीने पाप लागो होय तस्से मिच्छामि दुक्कडं । चार आर्तध्यान, चार रौद्रध्यान करीने पाप लागो होय तस्स मिच्छामि दुक्कडं । अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार करीने पाप लागो होय तस्स मिच्छामि दुक्कडं । पंच स्थावर, छठवें त्रस जीवन की विराधना, पंचेन्द्रिय तथा मरकर करीने पाप लागो होय तस्स मिच्छामि दुक्यडं । सप्त भय करीने पाप लागो होय, अष्ट मद करीने पाप लागो होय, अष्ट मूलगुण व्रत के अतीचार करीने पाप लागो होय, दश प्रकार बाह्य परिग्रह करीने पाप लागो होय, चौदह आभ्यन्तर परिग्रह करीने पाप लागो होय तस्स मिच्छामि दुक्कडं । पन्द्रह प्रमाद करीने पाप लागो होय, पच्चीस मल करीने पाप लागो होय, पाँच अतीचार करीने पाप लागो होय तस्स मिच्छामि दुक्कडं । हमारे सम्यक्त्व विषे किसी प्रकार दोष लागो होय तस्स मिच्छामि दुक्कडं । दुष्परिणाम कर, दुश्चेष्टा कर, दुराचार कर पाप लागो होय, तस्स मिच्छामि दुक्कडं । हींडता, बोलता, चालता, सोवता, मार्ग विषे देखे अनदेखे, सूक्ष्म बादर कोई जीव चाँपो होय, भय पायो होय, त्रास पायो होय, छेदन पायो होय, भेदन पायो होय, दुःख पायो होय तस्स मिच्छामि दुक्यडं । यतिराज, अर्जिका, श्रावक, श्राविका की अविनय तथा निन्दा करी होय, कराई होय, अनुमोदना करी होय तस्स मिच्छामि दुक्कडं । देव गुरु शास्त्र की अविनय करी होय, संकल्पित द्रव्यके विषे पाप लागो होय, सामायिक के ३२ दोष में से कोई दोष लागो होय, पाँच इन्द्रिय के सत्ताईस विषय कर पाप लागो होय तस्स

मिच्छामि दुक्कडं। हमारा किसी के साथ बैर नाहीं, विरोध नाहीं, राग नाहीं, रोष नाहीं, मान नाहीं माया नाहीं, हमारे समस्त जीवों के साथ उत्तम क्षमा भाव प्रवर्त्तो। तथा चहुँगति दुःख निवारण, जिन गुण सम्पत्ति भव-भव मुझे होउ।

श्री १०८ गुणों की जाप

परमेष्ठी ५—अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्वसाधु।
रत्नत्रय ३—श्री सम्यग्दर्शन, श्री सम्यग्ज्ञान, श्री सम्यक्चारित्र।
अनुयोग ४-प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग।

सिद्ध पूजा यन्त्र

सिद्ध के गुण ८—१ सम्यक्त्व, २ दर्शन, ३ ज्ञान, ४ अगुरुलघुत्व, ५ अवगाहनत्व, ६ सूक्ष्मत्व, ७ वीर्यत्व, तथा ८ निराबाधत्व।

अर्हन्त पूजा यन्त्र

सोलह कारण भावना—१-दर्शन विशुद्धि २-विनय सम्पन्नता, ३-शीलव्रतेष्वनतिचार, ४-अभीक्ष्ण-ज्ञानोपयोग, ५-संवेग, ६-शक्तितस्त्याग, ७-शक्तितस्तप ८-साधुसमाधि, ९-वैया-वृत्यकरण, १०-अर्हद्भक्ति, ११-आचार्य-भक्ति १२ बहुश्रुतभक्ति, १३ प्रवचन भक्ति १४-आवश्यक परिहाणि, १५-मार्ग-प्रभावना, १६-प्रवचनवात्सल्य।

आचार्य उपाध्याय का यन्त्र

दश विधि धर्म—१-उत्तम क्षमा, २-मार्दव, ३-आर्जव, ४-सत्य, ५-शौच, ६-संयम, ७-तप, ८-त्याग, ९-आकिंचन्य, १०-ब्रह्मचर्य ।

साधु पूजा का यन्त्र

(अ) दर्शन के अंक ८—१-निःशंकित, २-निःकांक्षित, ३-निर्विचिकित्सा, ४-अमूढ़ दृष्टि, ५-उपगूहन, ६-स्थितिकरण, ७-वात्सल्य, ८-प्रभावना ।

(ब) ज्ञान के अंग ८-१-व्यंजनोजिताय नमः २ अर्थसमग्राय नमः, ३-शब्दार्थभावपुण्याय नमः, ४-कालाध्ययनसमग्राय नमः,५-बहुमानसमग्राय नमः- ६-उपधानसमग्राय नमः, ७-वीर्याध्ययनसमग्राय नमः, ८-विनयेन मुदिताय नमः ।

(स) तेरह प्रकार चारित्र का यन्त्र—

महाव्रत ५—१-अहिंसा महाव्रत, २-सत्य महाव्रत, ३-अचौर्य महाव्रत, ४-ब्रह्मचर्य महाव्रत, ५-परिग्रह त्याग महाव्रत ।

गुप्ति ३—१-मनोगुप्ति, २-वचन गुप्ति, ३-कायगुप्ति ।

समिति ५—१-ईर्या समिति, २-भाषा समिति, ३-एषणा समिति, ४ आदान निक्षेपण समिति, ५ प्रतिष्ठापना समिति ।

। इस प्रकार ७५ गुण ।

तत्व २७ की विधी

तत्व ७—१ जीवतत्व, २ अजीवतत्व, ३ आस्रवतत्व, ४ वन्धतत्व, ५ संवरतत्व, ६ निर्जरातत्व, ७ मोक्षतत्व ।

पदार्थ ९—१ जीव पदार्थ, २ अजीव पदार्थ, ३ पुण्य पदार्थ पाप पदार्थ, ५ आस्रव पदार्थ ६ बन्ध पदार्थ, ७ संवर पदार्थ, ८ निर्जरा पदार्थ ९ मोक्ष पदार्थ ।

द्रव्य ६—१ जीवद्रव्य, २ पुद्गलद्रव्य, ३ धर्मद्रव्य, ४ अधर्म द्रव्य, ५ कालद्रव्य, ६ आकाशद्रव्य ।

पंचास्तिकाय ५—१ जीवास्तिकाय, २ अजीवास्तिकाय, ३ धर्मास्तिकाय, ४ अधर्मास्तिकाय, ५ आकाशास्तिकाय ।

सम्यक्त्व ६—१ मूल सम्यक्त्व, २ आज्ञा सम्यक्त्व, ३ वेदक-सम्यक्त्व ४ उपशम सम्यक्त्व, ५ क्षायिक सम्यक्त्व, ६ शुद्ध-सम्यक्त्व ।

॥ इति छत्तीसोच्चारण गुरु नाममाला ॥

卐

देव-वन्दना

जामें अष्ट प्रातिहार्य जामें चतुष्टय चार,
जामें चौंतीस अतिशय निहारे हैं ।
जामें पंच ज्ञान जामें सम्यग्विधान,
जामें शुद्ध तीन रत्नत्रय शोभा अधिकारी हैं ।
याहि जहाँ हाले शुभ धर्म उपदेश दीनें,
दिव्यता स्वभाव निज चेतना-विचारी हैं ।
संयम तप नेम योग शील व्रतधारी सदा,
ऐसो जिन-मूरति ताहि वन्दना हमारी है ।

समय हो तदनुसार आलोचना पाठ तथा कोई भी स्तुति पढ़ना

चाहिये। और अन्त मंगलस्वरूप ३ वार णमोकार मन्त्र कर सामायिक-विधि पूरी करनी चाहिये।

नोट—(क) अन्य आचार्यों ने १६ वीं भावना को प्रवचन-वत्सलत्व के नाम से माना है। जब तारण स्वामी ने इसे अन्तः सल्लेखनासार भावना माना है।

(ख) ज्ञानके ७ वें अंगको अन्य आचार्यों ने अनिन्हवाचार कहा है। जब तारणस्वामी ने वीर्याध्ययन माना है, जिसका अर्थ 'शक्ति को न छिपाते हुये अध्ययन करना कराना' होता है।

卐

तारणपंथीय दैनिक पूजा

श्री तत्व मंगल

(पूजा खड़े होकर और मिलकर भाव से पढ़िये)

तत्वं च नंद आनन्दमउ, चेयानन्द सहाव।
परम तत्व पदविन्द मय, नमियो सिद्ध सहाव ॥

गुरुउवएसिउ गुप्त रुइ, गुपत ज्ञान सहकार।
तारण तरण समर्थ मुनि, भव संसार निवार ॥

धर्म जु ओतो जिनवरहिं, अर्थति अर्थ संजोत।
भय विनास भव्य जु मुणहु, ममल न्यान परलोय ॥

ॐकार से सब भये, डार पत्र फल फूल।
प्रथम ताहि को वंदिये, यही सवन को मूल ॥

—श्लोक—

ॐकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव, ॐकाराय नमो नमः ॥

— चौपाई —

ॐकार सब अक्षर सारा, पञ्चपरमेष्ठी तीर्थ अपारा ।
ॐकार ध्यावें त्रैलोका, ब्रह्मा विष्णु महेश्वर लोका ॥
ॐकार ध्वनि अगम अपारा, बावन अक्षर गर्भित सारा ।
चारों वेद शक्ति है जाकी, ताकी महिमा जगत बखानी ॥
ॐकार घट घट परवेशा, ध्यावत ब्रह्मा विष्णु महेशा ।
नमस्कार ताको नित कीजे, निर्मल होय परम रस पीजे ॥

卐

देवदेवं नमस्कृत्य, लोकालोक-प्रकाशकं ।
त्रिलोक अर्थं ज्योतिः उद्यकार न विद्यते ॥
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥
परम गुरुभ्यो नमः, परमपराचार्येभ्यो नमः ।

॥ इति मंगलाचरणम् ॥

卐

समवशरण की महिमा

अहो जहां समवशरण जिनवर जू की महिमा, पार न पावें कोय ।
अहो जहां चार ज्ञान के धारी गणधर, पार न पावें सोय ॥
अहो जहां मान स्तम्भ जिन प्रति राजत, देखत वंदना होय ।
अहो जहां सिंहासन शोभित जिनवर का, जहँ छत्र तीन होय ॥
अहो जहां क्षुधा तृषा जिनको नहिं व्यापै, रागद्वेष नाहिं होय ।
अहो जहां रूप सरूप देव जिनवर को, नैन तृपत नहिं होय ॥
अहो जहां होठहु हालत नाहीं, शब्द अनक्षर वाणी, सुनत भव्य सुख होय ।
अहो जहां जिन शीश पै चमर ढुरें, नाशागमन न होय ॥

卐

भाव-पूजा

रच भाव के मन्दिर अनूपं, अकल मूरत मांहि ।
पुन भाव-सिंहासन विराजै, भाव बिन कुछ नांहि ॥१॥
भाव ही की करत सेवा, बैठ सन्मुख दास ।
निज भाव ही सब साज आगे, चित्त स्वामी पास ॥२॥
भाव ही के कलश भर भर, भाव नीर न्हाय ।
भाव ही के असन बहु विध, अंग अंग बनाय ॥३॥
भाव चन्दन भाव केशर, भाव कर घिस लेय ।
भाव ही के चरच स्वामी, तिलक मस्तक देय ॥४॥
भाव ही के पुष्प उत्तम, गोय माल अनूप ।
पहराय प्रभु को निरख नखसिख भाव खेवें धूप ॥५॥
भाव ही के जोय दीपक, भाव घृत कर सींच ।
भाव ही की करों त्यारी, धरों थारी बीच ॥६॥
भाव ही करके समरपन, सकल प्रभु को जोय ।
भाव ही निजभाव मांही, लय निरन्तर होय ॥७॥
भाव ही के संख झालर घंट ताल मृदंग ।
भाव ही के शब्द नाना, रहें अतिशय रंग ॥८॥
भाव ही की आरती, करत बहुत प्रनाम ।
स्तुति या विध उच्चरें, लहें लहें प्रभु के नाम ॥९॥
भाव-पूजा करो विधि से, या विध रीत बताय ।
श्री सम्पक दर्शन ज्ञान चरण चित लाय ॥१०॥

भाव-पूजा

रच भाव के मन्दिर अनूपं, अकल मूरत मांह ।
पुन भाव-सिंहासन विराजे, भाव जिन कुछ नांह ॥१॥
भाव हो की करत सेवा, बैठ सन्मुख दास ।
निज भाव ही सब साज आगे, नित स्वामी पास ॥२॥
भाव ही के कलश भर भर, भाव नीर नहाय ।
भाव ही के असन बहु विध, अंग अंग नवाय ॥३॥
भाव चन्दन भाव केशर, भाव कर घिस लेंग ।
भाव ही के चरच स्वामी, तिलक मस्तक देंय ।४॥
भाव ही के पुष्प उत्तम, गोय माल अनूप ।
पहराय प्रभु को निरख नखसिख भाव खेवें धूप ॥५॥
भाव ही के जोय दीपक, भाव घृत कर सीच ।
भाव ही की करों त्यारी, धरों थारी बीच ।६॥
भाव ही करके समरपन, सकल प्रभु को जोय ।
भाव ही निजभाव मांही, लय निरन्तर होय ॥७॥
भाव ही के संख झालर घंट ताल मृदंग ।
भाव हो के शब्द नाना, रहे अतिशय रंग ॥८॥
भाव ही की आरती, करत बहुत प्रनाम ।
स्तुति या विध उच्चरें, लहें लहें प्रभु के नाम ।९॥
भाव-पूजा करो विधि से, या विध रीत बताय ।
श्री सम्यक दर्शन ज्ञान चरण चित लाय ॥१०॥

(देव-शास्त्र-गुरु)

देवाङ्गलीय पूजा

ॐ जय जय जय, नमोस्तु नमोस्तु नमोस्तु ॥

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोये सव्वसाहूणं ॥

चत्तारि मङ्गलं-अरहंत मङ्गलं, सिद्ध मङ्गलं, साहू मङ्गलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मङ्गलं ।

चत्तारि लोगुत्तमा—अरहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा ।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अरहंत सरणं पवज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि ॥

— श्लोक —

अपवित्रः पवित्रो वा सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा ।
ध्यायेत्पञ्चनमस्कारं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१॥
अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा ।
यः स्मरेत् परमात्मानं स वाह्याभ्यन्तरे शुचिः ॥२।
अपराजितमंत्रोऽयं सर्वविघ्नविनाशनः ।
मंगलेषु च सर्वेषु प्रथमं मंगलं मतः ॥३॥
एसो पंच णमोयारो सव्वपावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं होइ मंगलम् ॥४॥
अर्हमित्यक्षरं ब्रह्मवाचकं परमेष्ठिनः ।
सिद्धचक्रस्य सद्बीजं सर्वतः प्रणमाम्यहम् ॥५॥

भाव-पूजा

रच भाव के मन्दिर अनूपं, अजब मूरत मांह ।
पुन भाव-सिंहासन विराजै, भाव जिन कुछ नांहि ॥१॥
भाव ही की करत सेवा, बैठ सन्मुख दास ।
निज भाव ही सब साज आगे, निरख स्वामी पास ॥२॥
भाव ही के कलश भर भर, भाव नीर नहाय ।
भाव ही के अशन बहु विध, अंग अंग नहाय ॥३॥
भाव चन्दन भाव केशर, भाव कर घिस लेय ।
भाव ही के चरच स्वामी, तिलक मस्तक देय ॥४॥
भाव ही के पुष्प उत्तम, गोय माल अनूप ।
पहराय प्रभु को निरख नखसिख भाव खेवें धूप ॥५॥
भाव ही के जोय दीपक, भाव घृत कर सीच ।
भाव ही की करों थारी, धरों थारी बीच ॥६॥
भाव ही करके समरपन, सकल प्रभु को जोय ।
भाव ही निजभाव मांही, लय निरन्तर होय ॥७॥
भाव ही के संख झालर घंट ताल मृदंग ।
भाव ही के शब्द नाना, रहें अतिशय रंग ॥८॥
भाव ही की आरती, करत बहुत प्रनाम ।
स्तुति या विध उच्चरें, लहें लहें प्रभु के नाम ॥९॥
भाव-पूजा करो विधि से, या विध रीत बताय ।
श्री सम्यक दर्शन ज्ञान चरण चित लाय ॥१०॥

(देव-शास्त्र-गुरु)

देवाङ्गलीय पूजा

ॐ जय जय जय, नमोस्तु नमोस्तु नमोस्तु ॥

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोये सव्वसाहूणं ॥

चत्तारि मङ्गलं-अरहंत मङ्गलं, सिद्ध मङ्गलं, साहू मङ्गलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मङ्गलं ।

चत्तारि लोगुत्तमा—अरहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा ।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि-अरहंत सरणं पवज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि ॥

— श्लोक —

अपवित्रः पवित्रो वा सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा ।
ध्यायेत्पञ्चनमस्कारं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१॥
अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा ।
यः स्मरेत् परमात्मानं स बाह्याभ्यन्तरे शुचिः ॥२॥
अपराजितमंत्रोऽयं सर्वविघ्नविनाशनः ।
मंगलेषु च सर्वेषु प्रथमं मंगलं मतः ॥३॥
एसो पंच णमोयारो सव्वपावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं होइ मंगलम् ॥४॥
अर्हमित्यक्षरं ब्रह्मवाचकं परमेष्ठिनः ।
सिद्धचक्रस्य सद्बीजं सर्वतः प्रणमाम्यहम् ॥५॥

कर्माष्टकविनिर्मुक्तम् मोक्षलक्ष्मीनिकेतनम् ।
सम्यक्त्वादिगुणोपेतं सिद्धचक्रं नमाम्यहम् ॥६॥
विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति शाकिनी-भूत-पन्नगाः ।
विषं निर्विषतां याति स्तूयमाने जिनेश्वरे ॥७॥

श्रीमज्जिनेन्द्रमभिवन्द्य जगत्त्रयेशं, स्याद्वादनायकमनंतचतुष्टयार्हं ।
श्रीमूलसंघसुदृशां सुकृतैकहेतुर्जैनेन्द्रयज्ञविधिरेष मयाभ्यधायि ॥

卐

इन्द्रध्वज–पूजा

स्वस्ति त्रिलोकगुरवे जिनपुङ्गवाय,
स्वस्ति स्वभावमहिमोदयसुस्थिताय ।
स्वस्ति प्रकाशसहजोर्जितदृङ्मयाय,
स्वस्ति प्रसन्नललिताद्भुतवैभवाय ॥
स्वस्त्युच्छलद्विमलबोधसुधाप्लवाय,
स्वस्ति स्वभावपरभावविभासकाय ।
स्वस्ति त्रिलोकविततैकचिदुद्गमाय,
स्वस्ति त्रिकालसकलायतविस्तृताय ॥
अर्हत्पुराणपुरुषोत्तमपावनानि,
वस्तून्यनूनमखिलान्ययमेक एव ।
अस्मिन् ज्वलद्विमलकेवलबोधवह्नौ,
पुण्यं समग्रमहमेकमना जुहोमि ॥
द्रव्यस्य शुद्धिमधिगम्य यथानुरूपं,
भावस्य शुद्धिमधिकामधिगन्तुकामः ।
आलंबनानि विविधान्यवलम्ब्य वल्गन्,
भूतार्थयज्ञपुरुषस्य करोमि यज्ञम् ॥

卐

शास्त्र–पूजा (गाथा)

हंपइ सुह कारण कम्मवियारण, भवसमुद्र तारण तरणम् ।
जिनवाणि नमस्यं सत्य पयस्यम्, स्वर्ग मोक्ष संगम करणम् ॥
त्रैसट्ठशालायभेयं लद्दिय पुराण ध्यान अवगहणं ।
वैंचारिद्रफलायणं प्रतिमान योग एरस करणं ॥
उवाइट्ठं लोयदिढयं दहविहि प्रमाणस्स भणियं ।
करणाय योगएरसकरणं द्वीपसमुद्दाय जिनवरगेही ॥
वैंचारित्रफलाणं क्रियाणधर्म ऋद्धि सहय्याणं ।
उवा सुगे सहय्याणं चरणाण योग एरस भाणयं ॥
मोक्खस्स करणं मोक्ख क्रिया मोक्खस्स कारणं मोक्खं ।
होयं च हियसंतो दिव्वाण योग एरम भणियं ॥ इति ॥

卐

गुणपाठ–पूजा

वारापुंज विशेषं सिद्धं अट्ठामि षोडसीकरणं ।
दह धर्म दर्शन अट्ठा ज्ञान अट्ठामि त्रयोदश चरितं ॥
ए पचहत्तर गुण सुद्ध वेदी वेदांत ज्ञानसो सुद्धं ।
मुक्ति सुभावं हढियं ए गुण आराध सिद्धि संपत्तं ॥
अरहंता छायल्ला सिद्धं अट्ठानि सूर छत्तीसा ।
उवझाया पंचवीसा अठवीसा होंति साहूणं ॥
वरअतिशय चौंतीसा अष्ट महाप्रातिहार्य संजुक्तं ।
नंतचतुष्टं सहियं छायन्ला अरहंतज्ञानस्य ॥
मोहक्षय सम्यक्तं केवलज्ञानेन हनें अज्ञानं ।
केवल दरसण दरसं अनंतवीर्य जनत रायेना ॥
सुहयं च नाम कम्म आयुकर्म निरजल अवगहनं ।
गोत्तं अगुरुलघुत्तं अव्वाह च वेद वेदणियं ॥

ए आराह अट्ठ गुण दहविध धर्म न होय दित अन्धा ।
बारा तप छबयासी छत्तीस गुण होंति सरेना ॥
ग्यारह अंग जु महियं चोदप पूर्वाय निरविशेषाणं ।
पंचवीसा गुणजुक्तं णाणो णाणेण तस्य उवझाया ॥
दह दरशण संभेदा भेदा होंति पंच ज्ञानेया ।
तेराविधि सो चरित अठवीसा होंति साहूणं ॥

ग्यारह नमस्कार

सिद्धों को नमस्कार

तत्वं च नंद आनन्द मउ, चेयानंद सहाव ।
परम तत्र पदविद नय, नमियो सिद्ध सहाव ॥

गुरु को नमस्कार

गुरु उवएसिउ गुपलइ गुपत न्यान महकार ।
तारणतरण समर्थ मुनी भव संसार निवार ॥

धर्म को नमस्कार

धर्म जु ओता जिनवरहि अर्थति अर्थ संजोय ।
भय विनास भव्य जु मुणहु ममस न्यान परलोय ॥

श्रावकाचार जी को नमस्कार

देवदेव नमस्कृत्यं लोकालोक —प्रकाशकं ।
त्रिलोकं अर्थ ज्योतिः ऊवंकारं च विंदते ॥

ज्ञान समुच्चयसार जी को नमस्कार

परमानंद परम ज्योतिः चिदानंद जिनात्मनं ।
सोहं रूप समयशुद्धं चिदस्थाने नमस्कृत्यं ॥

त्रिभंगीसार जी को नमस्कार

नमस्कृत्यं महावीरं भव्यानां भयविनाशनं ।
त्रिभंगीदलं प्रोक्तं च आस्रवनिरोधकारणम् ।

उपदेश शुद्धसार जी को नमस्कार

अप्पाणं सुधप्पाणं परमप्पा विमल निरमलं सरूपं ।
सिद्धसरूपं पीछंती नमामिहं परम देवदेवस्य ॥

कमलबत्तीसी जी को नमस्कार

तत्वं च परमतत्वं परमप्पा परमभाव दरसीये ।
परमजिनं परमेष्ठी नमामिहं परमदेवदेवस्य ॥

पण्डित पूजा जी को नमस्कार

ओंकारस्य ऊर्धस्य ऊर्ध्वं सद्भाव शाश्वतं ।
विंदस्थाने तिष्ठन्ते ज्ञानं मयं शाश्वतं ध्रुवं ॥

माला जी को नमस्कार

ॐकारवेदांत शुद्धात्मतत्वं प्रणमामि नित्यं तत्वार्थसार्थं ।
ज्ञानमयं सम्यक्दर्शनोत्थं सम्यक्त्वचरण चैतन्यरूपं ॥

चौबीस ठाणा जी को नमस्कार

उव उवन्न उवन्न विंद विंद भवनं विन्यानं विनयं स्वरं ।
उत्पन्नं नंतानंत स्वयं च स्वरयं, शुद्धं च शुद्धात्मनं ॥
उवनं उवन्न स्वभाव ममस्य ममलं, मय मूर्ति ज्ञानं ध्रुवं ।
लोकालोकत्वयं च स्वरयं, शून्यं सहाव स्वरयं ॥

इति श्री ग्यारह नमस्कार समाप्तम् ।

卐

मेरी द्रव्य-पूजा

(स्व० पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार)

कृमिकुलकलित नीर है जिसमें, कच्छ मच्छ मेंढक फिरते ।
है मरते औ वहीं जनमते प्रभो मलादिक भी करते ॥
दूध निकालें लोग छुड़ा कर बच्चे को पीते पीते ।
है उच्छिष्ट अनीति-लब्ध यो योग्य तुम्हारे नहिं दीते ॥१॥

दही घृतादिक भी वैसे है कारण उनका दूध यथा ।
फूलो को भ्रमरादिक सूंघें वे भी हैं उच्छिष्ट तथा ॥
दीपक तो पतङ्ग कालानल जलते जिस पर कीट सदा ।
त्रिभुवनसूर्य ! आप हो अथवा दीप दिखाना नहीं भला ॥२॥

फल मिष्टान्न अनेक यहां पर उसमें ऐसे एक नहीं ।
मलप्रिया मक्खी ने जिसको आकर प्रभुवर छुआ नहीं ॥
यों अपवित्र पदार्थ अरुचिकर तू पवित्र सब गुणधेरा ।
किस विधि पूजूं क्याहि चढाऊँ चित्त डोलता है मेरा ॥३॥

औ आता है ध्यान तुम्हारे क्षुधा तृषा का लेश नहीं ।
नाना रसयुत अन्नपान का अतः प्रयोजन रहा नहीं ।
नहिं वांछा न विनोद भाव नहिं राग अंश का पता कहीं ।
इतसे व्यर्थ चढ़ना होगा औषधि सम जब रोग नहीं ॥४॥

यदि तुम कहो रत्न वस्त्रादिक भूषण क्यो न चढ़ाते हो ।
अन्य सदृश पावन है अर्पण करते क्यों सकुचाते हो ॥
तो तुमने निस्सार समझकर खुशी खुशी उनको त्यागा ।
हो वैराग्य लीन मति स्वामिन् इच्छा का तोड़ा तागा ॥५॥

तब क्या तुम्हे चढ़ाऊँ वे हो कहूं प्रार्थना ग्रहण करो।
होगी यह तो प्रगट अज्ञता तव स्वरूप की सोच करो॥
मुझे धृष्टता दीखे अपनी और अश्रद्धा बहुत बड़ी।
हेय तथा संत्यक्त वस्तु यदि तुम्हें चढ़ाऊँ घड़ी घड़ी॥६॥

इससे 'जुगल' हस्त मस्तक पर रखकर नम्रीभूत हुआ।
भक्ति सहित मैं प्रणमूं तुमको बार बार गुणलीन हुआ॥
संस्तुति शक्ति समान करूं औ सावधान हो नित तेरी।
काय वचन की यह परिणति हो अहो द्रव्यपूजा मेरी॥७॥

भावभरी इस पूजा से हो होगा आराधन तेरा।
होगा तुव सामीप्य प्राप्त औ सभी मिटेगा जग फेरा॥
तुझमें मुझमें भेद रहेगा नहि स्वरूप से तब कोई।
ज्ञानानन्द कला प्रगटेगी थी अनादि से जो खोई।८।

卐

शास्त्र की व्याख्या

शास्त्र का नाम काहे सों कहिये, जिसमें शाश्वतो धर्म, सच्चे गुरु और सच्चे देव का स्वरूप या जीव को सिद्ध होने की महिमा चले। या दर्शनस्थिति ज्ञानस्थिति चारित्रस्थिति धर्म की उत्पत्ति कर्मों की निवृत्ति या जीव की मुक्ति, कलन, चरण, रमण, ॐकार प्रियंकर ह्रियंकार उवनदिठ मुक्ति दिठ ऐसो निज स्वभाव चले ताको नाम शास्त्र सो कहिये। बहुरि जामें मारण है तारण है वध बन्धन है विदारण है ऐसो कथन चले ताको नाम अशास्त्र कहिये। बहुरि जाके सुनने से या जीव को साहस बंधे सम्यक्त्व की प्राप्ति होय बोध बीज की उत्पत्ति होय ताको नाम शास्त्र जी कहिये।

अब सूत्र नाम काहे सों कहिये? जाके श्रवण से या जीव को मन वचन काय को एक सूत्र होय ताको नाम सूत्र कहिये। जाकर है मन कहूँ को चले, वचन कहूँ को चले, काया जाकी थिर नाहीं, ताको सूत्र नाहीं कहिये। धन्य हैं गुरु तारणतरण जिनके नव सूत्र सधरे व इनमें बत्तीस सूत्र में चौदह ग्रन्थों की रचना करी।

द्रव्यपूजा और भावपूजा का रहस्य

वचोविग्रह-संकोचो द्रव्यपूजा निगद्यते ।

तत्र मानस-संकोचो भावपूजा पुरातनैः ॥

(अमितगति आचार्य)

नोटः—श्री आचार्य अमितगति आचार्य-परम्परा में प्रामाणिक एवं उच्च कोटि के आचार्य थे। इतना ही नहीं, आपके द्वारा 'अमितगति श्रावकाचार' आदि की रचना भी हुई है। इसी श्रावकाचार ग्रन्थ में आपने इस श्लोक द्वारा यह स्पष्ट उपदेश दिया है कि वचनों द्वारा भगवान के गुणानुवाद करना, स्तुति आरती भक्ति इत्यादि करना ही द्रव्यपूजा है। तथा मन को एकाग्र करके भावों में भगवान के स्वरूप का ध्यान करना भावपूजा है। आचार्य कि उपरोक्त श्लोक का भाव और भी अधिक स्पष्ट करने के विचार से ही श्री पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार सा० 'युगवीर' ने 'मेरी द्रव्यपूजा' की रचना कविता में की है। अतः तारण समाज को वचनों द्वारा की गई भगवान की स्तुति-पूजा करना द्रव्यपूजा ही समझना चाहिये। और जब जो भाई मन को एकाग्र करके भगवान का ध्यान करें तब भावपूजा की है ऐसा जानना चाहिये। किन्तु इस भाव-पूजा का पूर्ण अधिकारी मुनिवर्ग है और श्रावक उपरोक्त द्रव्य-पूजा का।

हमारे बहुत से तारण समाज वाले भाई ऐसा जानते हैं कि हमारी समाज में तो भाव पूजा होती है और अष्ट द्रव्य से पूजा करना द्रव्य-पूजा कहलाती है, किन्तु ऐसा मानना ठीक नहीं। श्री अमितगति आचार्य तथा श्री तारण स्वामी के उपदेशानुसार जो हम और आप चौबीस तीर्थङ्करों की स्तुति करते हैं यही उनकी सच्ची द्रव्य-पूजा है। और जब उनका ध्यान करते हैं तब भावपूजा होती है, ऐसा निश्चय करना चाहिये। भगवान की स्तुति करना और उनके गुणानुवाद गाना ही सच्ची निर्दोष द्रव्यपूजा है, क्योंकि वचन वर्गणा पुद्गल द्रव्य है।

—ब्र० गुलाबचन्द।

श्री गुरु तारण—स्तोत्र

शुद्ध चिद्रूपतत्वज्ञं, मोक्षमार्गप्रदर्शकम् ।
भक्त्याहं मण्डलाचार्यं वन्दे श्री गुरुतारणम् ॥१।

धन्या वीरश्री माता, वीर-माता महासती ।
धन्योऽसि त्वं गढाशाह, वन्दे श्री गुरुतारणम् ॥२॥

मार्गशीर्षोत्तमे मासे, सुनक्षत्रे सुमंगले ।
सप्तम्यां शुक्लपक्षे च, वन्दे श्री गुरुतारणम् ॥३॥

जन्मसूरति रम्या सा, नगरी च पुष्प.वती ।
गुरुजन्मोत्सवं यत्र, वन्दे श्री गुरुतारणम् ॥४॥

पूर्वजन्मार्जितं ज्ञानं, संस्कारेणात्र जन्मनि ।
बाल्यकालादति प्राज्ञं, वन्दे श्री गुरुतारणम् ॥५॥

पूर्णजीवनवृत्तान्तं, नैव जानामि सज्जन ।
परम्परानुसारेण, वन्दे श्री गुरुतारणम् ॥६॥

श्रूयते श्री गुरोर्दीक्षा, वनं सेमरखेड़िकम् ।
ज्ञानध्यानतपोयुक्तं, वन्दे श्री गुरुतारणम् ॥७।

निसही-क्षेत्रमध्ये च वेतवानिकटे खलु ।
अन्ते समाधिसम्प्राप्तं, वन्दे श्री गुरुतारणम् ।'८॥

आत्म-तत्व-रहस्यज्ञं, महामान्यं जगद्गुरुम् ।
प्रचण्ड-धर्मसूरिं तं, वन्दे श्री गुरुतारणम् ।९॥

ममात्मा ह्वयं स्तोत्रं श्रुत्वा स्वामिन् ! ददातु मे ।
शांति शांति सदा शांति, वन्दे श्री गुरुतारणम् ॥१०॥

卐

आरती तारण स्वामी की :—

आरती तारण स्वामी की, कि जय जय जय जिनवाणी की,
गले में समकित की माला, हृदय में भेद-ज्ञान पाला ।
धन्य वह मोक्षपथ वाला, कि महिमामय शिवगामी की ।टेक॥
निसई, सूखा सेमरखेड़ी बजावें देव मधुर भेरी ।
सुनो प्रभु ! विनय आज मेरी, कि श्री गुरुदेव नमामी की ।टेक॥
मुझे इन कर्मों ने घेरा, असाता दूर करो मेरा ।
लगाना अब न प्रभू बेरा, विनय सुन अपने प्राणी की ॥टेक॥
आरती चौदह ग्रन्थो की, कि जय जय जय निरग्रन्थों की ।
कुँवर जय बोलो सतों की, बेतवा तीर नमामी की ॥टेक॥

आरती ॐ जय प्रभु जिनदेवा की

ॐ जय प्रभु जिन देवा, तुम बिन शरण न दूजा कोई ।
हो सब दुःख छेवा, ॐ जय प्रभु जिन देवा ।१॥
इन्द्र नरेन्द्र फणेन्द्र जु सेवें, चरण कमल धारे ।
मुनिजन गुणिजन ऋषिगण सारे, गुण वर्णत हारे ॥२॥
समवशरण लक्ष्मी कर मंडित, चतुरानन राजै ।
दर्शन करत मिटे भव भव दुःख, सब पातक भाजै ॥३॥
तीनों काल खिरै वाणी जिम, मेघझड़ो बरसे ।
सुर नर खग जिय जन्तु सारे, सुनकर मन हरषे ॥४॥
घाति अघाति नाश किये तुम, दुःख-दायक भारी ।
मुक्ति-रमा के कथ विराजो, अविचल पद धारी ।५॥
दर्शन ज्ञान अनन्त धरो तुम, शिव - सुख के दाता ।
सुख शक्ती का पार न पावै, तुम त्रिभुवन त्राता ।६।
पतित उधारन नाम तिहारो, गावै जग सारा ।
'मधुर'' शरण तुमरी गहि लीनी, कीजे भव पारा ॥७॥

कुन्थु अरह मल्लि मुनिसुव्रत बीसा, नमि अष्टांग सिद्ध इकबीसा।
नेमिनाथ साहसि गिरि नेमि, सहनशील बाईस परीषह ॥
पारसनाथ तीर्थङ्कर तेईस, वर्द्धमान जिनवर चौबीस।
चार जिनेन्द्र चहूं दिश गये, बीस सम्मेद शिखर पर गये।
आदिनाथ कैलाशें गये, वासुपूज्य चम्पापुर गये।
नेमिनाथ स्वामी गिरनार, पावापुरी वीर जिनराज ॥
दो धवला दो स्यामला वीर, दो जिनवर आरक्त शरीर।
हरे वरण दो हो फुलवन्त, हेमवरण सोला इकवंत ॥
चौबीस तीर्थङ्कर मोक्षे गये, दश कोड़ाकोड़ी काल बिल भये।
भये सिद्ध अरु हाेंय अनंत, जे वंदों चौबीस जिनंद ॥
वंदों तीर्थङ्कर चौबीस, वंदों सिद्ध बसें जगदीस।
वंदों आचारज उवझाय, वंदों साधु गुरुन के पांय ॥

— दोहा —

- गुरु को नमो, नमो सिद्ध शिव क्षेत्र।
ऐं जिन नमो, जिनके नाम विशेष ॥

卐

...ीस तीर्थङ्करों के नाम

, मन वच काय हिये में धरों।
, नाम लेत पातक छय जायें ॥
...र ...ुजाति स्वामी महावीर।
...धभानन जी कहूं बखान ॥
...रीति जग कीरत होय।
...द्रबाहु कहिये जिन णेम ॥

चहूँ गति भ्रमत दुःख भयो भारी, सुख नहिं कबहूँ पायो ।
ऐसे काल तरण जिन उवने, मुक्तिपंथ दरसायो ॥ टेक ॥

काल पंचमों चपल अनिष्ट है, इष्ट दृष्टि नहिं उपजो ।
न्याय बलेन इष्ट संजोये, भय षिपिय कम्म गलिज्जे ॥टेक॥

संसय सरण नन्त भय भारी, भमह दृष्टिय भमिज्जे ।
भय विनासु तं भव्य उवन्नो, कम्म उवन्न षिलिज्जे ॥टेक॥

दव्व कम्मु आवर्ण उपज्जय, सल्य संक भय ओतम् ।
न्यानावरण न्यान तं विलियो भय षिपि सिद्धि संपातम् । टेक॥

वज्रनराच संहनन जं सहियो, भय विनास सुपयेसम् ।
तं सरीर औदारिक सहियो, षिपिय तरण सुपयेसम् ॥टेक॥

चक्खु अचक्खुह ज भो उपजं, गुहजह भो जु अनन्तु ।
तारण तरण सहावह जिनियो न्याय दृष्टि विलयंतु ॥ टेक ॥

तारण तरण सहावह विलियो, सल्य संक विलयंतु ।
न्यान विन्यानह ममलसरूवे, भय खिपिय मुक्ति पहुँतु ॥टेक॥

[पश्चात् नीचे लिखो क्रिया करना व पढ़ना चाहिये ।]

आदि में श्री आदिनाथ देव जो भये, अन्त में श्री महावीर देव जी भये । बाईस तीर्थङ्कर मध्यानुगामी भये । चौबीसी को नाम लीजे तो पुण्य की प्राप्ति होय ।

卐

वर्तमान चौबीसी

श्री ऋषभ अजित संभव अभिनन्दन, सुमति पद्म प्रभु छठे जिनेश्वर ।
सप्तम तीर्थङ्कर भये है सुपारस, चन्द्रप्रभु आठम है निवारस ॥
पुष्पदंत शीतल श्रेयांस, वासुपूज्य और विमल अनन्त ।
धर्मनाथ वंदत अविनीश्वर, सोलह कारण शाँति जिनेश्वर ॥

कुंथु अरह मल्लि मुनिसुव्रत वीसा, नमि अष्टांग सिद्ध इकवीसा ।
नेमिनाथ साहसि गिरि नेमि, सहनशील बाईस परीषह ॥
पारसनाथ तीर्थङ्कर तेईस, वर्द्धमान जिनवर चौवीस ।
चार जिनेन्द्र चहूँ दिश गये, वीस सम्मेद शिखर पर गये ।
आदिनाथ कैलाशें गये, वासुपूज्य चम्पापुर गये ।
नेमिनाथ स्वामी गिरनार, पावापुरी वीर जिनराज ॥
दो धवला दो स्यामला वीर, दो जिनवर आरक्त शरीर ।
हरे वरण दो हो कुलवन्त, हेमवरण सोला इकवंत ॥
चौवीस तीर्थङ्कर मोक्षे गये, दश कोड़ाकोड़ी काल चिल भये ।
भये सिद्ध अरु होंय अनंत, जे वंदों चौवीस जिनंद ॥
वंदों तीर्थङ्कर चौवीस, वंदों सिद्ध वसें जगदीस ।
वंदों आचारज उवझाय, वंदों साधु गुरुन के पांय ॥

— दोहा —

देव धरम गुरु को नमो, नमो सिद्ध शिव क्षेत्र ।
विदेह क्षेत्र में जिन नमो, जिनके नाम विशेष ॥

卐

विदेह क्षेत्र के वीस तीर्थङ्करों के नाम

सीमन्धर स्वामी जिन नमों, मन वच काय हिये में धरों ।
युगमन्धर स्वामी जुग पायें, नाम लेत पातक छय जायें ॥
बाहु सुबाहु स्वामी धर धीर, श्री सुजाति स्वामी महावीर ।
स्वयंप्रभु स्वामी जी को ध्यान, ऋषभानन जी कहूँ बखान ॥
अनन्तवीर सूरप्रभु सोय, विशालकीर्ति जग कीरत होय ।
वज्रधर स्वामी चन्द्रधर नेम, चंद्रबाहु कहिये जिन पेम ॥

भुजंगम ईश्वर जग के ईश, नेमीश्वरजू को निरख करीश ।
वीर्यसेन वीरज बलवान, महाभद्र जो कहिये जान ॥
देवयश स्वामी श्री परमेश, अजित वीर सम्पूर्ण नरेश ।
विद्यमान बीसी पढो चितलाय, जाते धर्म पाप छय जायें ॥

ऐसे चौबीस तीर्थंकर जिन्होंने आठ कर्म आठ मद अठारह दोषों को नष्ट कर निर्वाण पद प्राप्त किया, ऐसे जिनेन्द्र देव तिनको बारम्बार नमस्कार हो । ऐसे बीस तीर्थङ्कर विदेह क्षेत्र में सदा सर्वदा विराजमान तिनको नमस्कार कीजे तो पुण्य की प्राप्ति होय ।

卐

विनय-बैठक

अब कहा दर्शावत हैं कि शास्त्र सूत्र सिद्धान्त नाम अर्थ जो शास्त्रनाम काहे सों कहिये । जिनमें सच्चे देव सच्चे गुरु और सच्चे धर्म की महिमा चले । कैसे हैं सच्चे देव गुरु धर्म और शास्त्र ?

सांचो देव सोई, जामें दोष को न लेश कोई ।
सांचों गुरु वही, जाके उर कछु की न चाह है ॥
सही धर्म वही, जहां करुणा प्रधान कही ।
ग्रन्थ सही वही, जहाँ आदि अन्त एक सो निरवाह है ॥
यही जग रतनचार, ज्ञान ही में परख यार ।
सांचे लीजे झूठे डार, नरभव को लाहो है ॥
मनुष्य विवेक विना, पशु के समान गिना ।
यातें यह बात ठीक, पारणी सलाह है ॥

卐

— गाथा —

सूत्रं तं जिन उक्त' तं श्रुतं शुद्ध भाव सकलियं ।
असूत्रं नव पीछति सूत्रं शशि हाव शुद्ध मप्पाणं ॥

अथ सिद्धान्त नाम अर्थ श्री जामें सिद्धों के आदि अंत नय लिए कथन चले, चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नव नारायण, नव प्रतिनारायण, नव बलभद्र ऐसे त्रेसठ शलाका के पुरुषों का कथन चले या उनके गुणों की महिमा चले वाको नाम सिद्धान्त कहिये। अब यथा नामा तथा गुणाः गुण शोभित नाम, नाम शोभित गुण। धन्य भगवान, तुम्हारे नाम भी वंदनीक और गुण भी वंदनीक।

दोहा—

नाम लेत पातक कटें, विघन विनासे जांय।
तीन लोक जिन नाम को, महिमा वरणो न जाय॥१॥
गुण अनंतमय परमपद, श्री जिनवर भगवान।
ज्ञेय लक्ष है ज्ञान में, अचल महा शिवथान॥२॥
अगम हती गुरुगम्य बिना, गुरुगम दई लखाय।
लक्ष कोस की गैल है, पल में पहुँचे जाय॥३॥
विघन-विनाशन भयहरन, भयभंजन गुरुतार।
तिनके नाम जो लेत ही, संकट कटत अपार॥४॥
कठिन काल विकराल में, मिथ्या मत रहो छाय।
सम्यकभाव उदोत कर, शिवमग दियो बताय॥५॥
परम्परा यह धर्म है, केवल—भाषित सोय।
ताको नय वाणी कथित, मिथ्या मत को खोय॥६॥
धन्य धन्य जिनधर्म को, सब धर्मों में सार।
ताको पंचमकाल में, दरसायो गुरु तार॥७॥
धन्य धन्य गुरु तारजी, तारण तुमरो नाम।
जो नर तुमको जपत है, सिद्ध होत सब काम॥८॥
जो कदापि गुरु तार की, नहिं होतो अवतार।
मिथ्या भव सागर विषें, फंसे लहते पार॥९॥

गुणवय तवसम पडिमा दाण जलगालणं अणत्थमियं ।
दंसण णाण चरित्तं किरिया तेपण्ण सावगा भणिया ।।

卐

आरती श्री गुरुदेव की

आरती श्री गुरुदेव तुम्हारी, देव तुम्हारो श्री गुरुदेव तुम्हारी ।।टेक।।
तारण तरण विरद के धारी, आरति श्री गुरुदेव तुम्हारी ।।

जन्म नगर पुष्पावति प्यारी, आरति श्री गुरुदेव तुम्हारी ।
सेमरखेडी में दीक्षा धारी, आरति श्री गुरुदेव तुम्हारी ।।

निसई साधु समाधि तुम्हारी, आरति श्री गुरुदेव तुम्हारी ।
वेत्रवती सरिता के पारी, आरति श्री गुरुदेव तुम्हारी ।।

धन्य धन्य तुम अतिशय धारी, आरति श्री गुरुदेव तुम्हारी ।
चौदह ग्रन्थ रचे सुखकारी, आरति श्री गुरुदेव तुम्हारी ।।

भवि जन गण के तुम हितकारी, आरति श्री गुरुदेव तुम्हारी ।
तुम गुरुदेव भवोदधि तारी, आरति श्री गुरुदेव तुम्हारी ।।

जय जय परम धर्म दातारी, आरति श्री गुरुदेव तुम्हारी ।
विनय करें श्रावक पद धारी, आरति श्री गुरुदेव तुम्हारी ।।

आरती हो जाने पर चन्दन परसाद हो चुकने पर तत्त्व पढा जाय व जाते समय सब भाईयों को खड़े होकर सामूहिक रूप से एक साथ कोई स्तुति या विनती पढना चाहिये ।

वार्षिक मेला व मेला तिलक प्रतिष्ठा के अवसर पर मंदिर-विधि

कार्यक्रम:—

१—तत्व पढ़कर श्री ममल पाहुड़ जी ग्रन्थ में से कोई भी एक फूलना पढ़ना।

२—संझा भक्ति पूर्वक ५ भजन मय आचरण फूलना के करना चाहिये। आचरण फूलना के प्रारम्भ में दीपक प्रज्वलित कर लेना।

३—तत्पश्चात् सावधान होकर सामूहिक रूप से तत्व पढ़कर अवसर के अनुरूप जिस फूलना का अथवा श्री छद्मस्थ वाणी जी ग्रन्थ का या तीन बत्तीसी जी में से जिसका स्वाध्याय करना हो—उनकी गाथायें निश्चित समाप्ति होने तक के दिनों की अवधि के अनुसार विभाजन करके क्रमशः पढ़ना चाहिए। तदुपरांत—

४—धर्मोपदेश की विधि निम्न प्रकार पूर्ण करें—साधारण मंदिर विधि पेज १५ से २२ तक में से।

(१) आदि में श्री आदिनाथ देव जी भये, वर्तमान चौबीसी पढ़ना।

(२) विदेह क्षेत्र के बीस तीर्थंकरों की नामावली पढ़ना। सीमंधर स्वामी जिन, आदि।

(३) विनय बैठक।

(४) शास्त्र जी की व्याख्या।

५—जिन ग्रन्थों की गाथायें स्वाध्याय में पढ़ी गई हों, उनका अर्थ, प्रवचन व विशेष रूप से विद्वान पण्डित द्वारा उपदेश।

६—तीनों आशीर्वाद पढ़ना। तत्पश्चात् —

७—अब समुच्चय का अंतिम आशीर्वाद मय सिद्ध ज्ञान देवों के द्वारा गुरु के उपदेश धर्म के निरूपण आदि·········पूरा भाषा पाठ।

८—अवलबत्ती पढ़ना चाहिए। तत्पश्चात्—

९—आरती इच्छा भक्ति पूर्वक करें।

नोट—श्री तिलक महोत्सव के दिन आरती की [illegible] पूर्वक यथाशक्ति बोलना चाहिए। यही एक प्रणाली ऐसी है कि जिसके द्वारा तीर्थ क्षेत्रों की और उनमें स्थापित धर्म संस्थाओं की [illegible] की धर्मप्रभावना अक्षुण्ण रूप से होती रहती है। —ब्र० गु० [illegible]।

१०—अंत में—उत्पन्न रज प्रवेश गगन [illegible] दुःखेन काल विलयन्ती। जय बोलिये, जय नमोस्तु।

११ समय हो तो पुरुष वर्ग व महिलाओं के द्वारा एक या दो भजन पढ़े जावें।

तत्पश्चात्—

चंदन तिलक तथा प्रसाद अन भंडार जिन महानुभावों की ओर से आया हो सूचना रूप से उनका नाम ठाम कहकर उनके शुभ भावों की वृद्धि हो ऐसा आशीर्वादात्मक भाव शब्दावलि द्वारा प्रगट किया जाना चाहिये। तत्पश्चात् चंदन तिलक लगाना व प्रसाद वितरण करना। ध्यान रहे कि चन्दन कटोरी की बोली बोलने का भी विशेष महत्व अपनी समाज में है।

अंत मे तत्व पढ़कर कार्य विसर्जन।

卐

दशलाक्षणी-पर्व का कार्यक्रम

१—प्रातःकाल प्रभाती या प्रभातफेरी।

२—स्नान आदि के बाद अपने अपने पाठ, स्वाध्याय करना।

३—दैनिक पूजा-पृष्ठ क्रमांक ९ से १२ तक। बाद इसी के साथ दशलाक्षण धर्म व सोलह कारण भावना तथा तीन बत्तीसी या तारण त्रिवेणी का पाठ सामूहिक रूप से पढ़ना चाहिये।

४—श्री ममल पाहुड़ जी ग्रन्थ से १ फूलना पढ़ना चाहिए।

५—इच्छा भक्ति पूर्वक ५ भजन।

६—तीन बत्तीसी जी ग्रन्थ व धर्माचरण फूलना का स्वाध्याय धर्मोपदेश पूर्वक मंदिर विधि आगे लिखे मूजब करना।

दशलक्षण पाठ

卐

सोरठा—पीडैं दुष्ट अनेक, बांध मार बहुविधि करैं ।
धरिये छिमा विवेक, कोप न कीजे पीतमा ॥

[चौपाई मिश्रित गीताछन्द]

उत्तम छिमा गहो रे भाई, इह भव जस पर भव सुखदाई ।
गाली सुनि मन खेद न आनो, गुनको औगुन कहै अयानो ॥
कहि है अयानो वस्तु छीनै, बांध मार बहुविधि करैं ।
घरतैं निकारैं तन विदारैं, बैर जो न तहां धरै ॥
जे करम पूरब किये खोटे, सहै क्यों नहिं जीयरा ।
अति क्रोध अगनि बुझाय प्रानी, साम्य जल ले सीयरा ॥१॥

मान महाविषरूप करहि नीच-गति जगतमें ।
कोमल सुधा अनूप, सुख पावै प्रानी सदा ॥
उत्तम मार्दव गुन मन माना, मान करनको कौन ठिकाना ।
बस्यो निगोदमाहिं तैं आया, दमरी रूंकन भाग बिकाया ॥
रूंकन बिकाया भागवशतैं, देव इकइन्द्री भया ।
उत्तम मुआ चाण्डाल हूआ, भूप कीडोंमें गया ॥
जीतव्य जोवन धन गुमान, कहा करै जलबुदबुदा ।
करि विनय बहुगुन बड़े जनकी, ज्ञानका पावै उदा ॥२॥

कपट न कीजै कोय, चोरनके पुर ना बसैं ।
सरल सुभावी होय ताके घर बहु सम्पदा ।
उत्तम आर्जव रीति बखानी, रंचक दगा बहुत दुखदानी ।
मनमें हो सो वचन उचरिये, वचन होय सो तनसौं करिये ॥

करिये सरल तिहुं जोग अपने, देख निर्मल आरसी ।
मुख करै जैसा लखै तैसा, कपट प्रीति अंगारसी ॥
नहिं लहै लछमी अधिक छलकरि करमबंध विशेषता ।
भय त्यागि दूध बिलाव पीवै, आपदा नहिं देखता ॥३॥

कठिन वचन मत बोल, परनिंदा अरु झूठ तज ।
सांच जवाहर खोल, सतवादी जगमे सुखी ॥
उत्तम सत्य वरत पालीजै, पर विश्वासघात नहिं कीजै ।
सांचे झूठे मानुष देखो आपन पूत स्वपास न पेखो ॥
पेखो तिहायत पुरुष सांचेको, दरब सब दीजिये ।
मुनिराज श्रावक की प्रतिष्ठा, सांच गुन लख लीजिये ॥
ऊँचे सिंहासन बैठ वसुनृप, धरम का भूपति भया ।
वच झूठसेती नरक पहुँचा, सुरग मे नारद गया ॥४॥

धरि हिरदै सन्तोष, करहु तपस्या देह सों ।
शौच सदा निरदोष, धरम बड़ो संसार मे ॥
उत्तम शौच सर्व जग जाना, लोभ पाप को बाप बखाना ।
आशा फांस महा दुखदानी, सुख पावै सन्तोषी प्रानी ॥
प्रानी सदा शुचि शील जप तप, ज्ञान ध्यान प्रभावतै ।
नित गंगजमुन समुद्र न्हाये, अशुचिदोष सुभावतै ॥
ऊपर अमल मल भरयो भीतर, कौन विध घट शुचि कहै ।
बहु देह मैली सुगुनथैली, शौचगुन साधू लहै ॥५॥

काय छहों प्रतिपाल, पचेन्द्री मन वश करो ।
संयम रतन संभाल, विषय चोर बहु फिरत है ॥
उत्तम संजम गहु मन मेरे, भवभवके भाजे अघ तेरे ।
सुरग नरक पशुगति में नाही, आलसहरन करन सुखठाही ॥
ठाही पृथ्वी जल आग मारुत, रूख त्रस करुना धरो ।

सपरसन रसना घ्रान नैना, कान मन सब वश करो ॥
जिस बिना नहिं जिनराज सीझे, तू रुल्यो जगकीचमें ।
इक घरी मत बिसरो करो नित, आव जममुखबीचमें ॥६॥

तप चाहें सुरराय, करमशिखरको वज्र है ।
द्वादशविधि सुखदाय, क्यों न करै निज सकति-सम ॥

उत्तम तप शिवमार्ग बखाना, करमशिखर को वज्र समाना ।
बस्यो अनादि निगोद मझारा, भूविकलत्रय पशुतन धारा ॥
धारा मनुषतन महादुर्लभ, सुकुल आयु निरोगता ।
श्रीजैनवाणी तत्वज्ञानी भई विषयपयोगता ॥
अति महा दुर्लभ त्याग विषय कषाय जो तप आदरैं ।
नरभव अनूपम कनकघर पर, मणिमयी कलसा धरैं ॥७॥

दान चार परकार, चार संघको दीजिये ।
धन बिजुली उनहार, नरभव लाहो लीजिये ॥

उत्तमत्याग कह्यो जगसारा, औषधि शास्त्र अभय आहारा ।
निहचे रागद्वेष निरवारै, ज्ञाता दोनों दान संभारै ॥
दान संभारै कूपजलसम दरब घर में परिनया ।
निजहाथ दीजे साथ लीजे, खाया खोया बह गया ॥
धनि साधु शास्त्र अभयदिवैया, त्याग राग विरोधको ।
बिन दान श्रावक साधु दोनों, लहै नाहीं बोधको ।८।

परिग्रह चौबिस भेद, त्याग करैं मुनिराज जी ।
तिसनाभाव उछेद, घटती जान घटाइये ॥

उत्तम आकिंचन गुण जानों परिग्रहचिन्ता दुख ही मानों ।
फांस तनकसी तन में सालै, चाह लंगोटी की दुख भालै ॥
भालै न समता सुख कभी नर बिना मुनि मुद्रा धरैं ।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

शील-बाड़ नौ राख, ब्रह्म-भाव अन्तर लखो ।
करि दोनों अभिलाख, करहु सफल नरभव सदा ।

उत्तम ब्रह्मचर्य मन आनो, माता बहिन सुता पहिचानो ॥
सहे बानवरषा बहु सूरे, टिके न नैन बान लखि कूरे ॥
कूरे तिया के अशुचितनमे, काम रोगी रति करैं ।
बहु मृतक सड़हिं, मसान माहीं, काक ज्यों चोंचैं भरैं ।
संसार में विषबेल नारी, तज गये जोगीश्वरा ।
'द्यानत' धरमदशपैड़ि चढ़िके, शिवमहल में पग धरा ॥१०॥

दशलक्षण वंदो सदा मन वांछित फलदाय ।
करहुँ आरती भारती हम पर होउ सहाय ॥

卐

पं० भूधरदास कृत दशलक्षण धर्म

दश लक्षण वदों सदा, मनवांछित फलदाय ।
करहुँ आरती भारती हम पर होउ सहाय ॥
अब दश लक्षण धर्म के, कहूँ मूल गुण अंग ।
जे नित श्री आनन्द मुनि, पालत हैं सरवंग ॥

चौपाई –

विना दोष ही जो दुख देंय, समरथ होय सकल सहलेंय ।
क्रोध कषाय न उपजे जहां, उत्तम क्षमा कहावे तहां ॥१॥
आठ महामद पाय अनूप, निरभिमान वरतं मृदु रूप ।
मान कषाय जहां नहिं होय, मार्दव धर्म नाम है सोय ॥२॥

जो मन चिंतै सो मुख कहै, करै कायसो कारज वहै ।
मायाचार न उर पाइये, आर्जव धर्म यही गाइये ।३॥
बोलै वचन स्वपर हितकार, सत्य स्वरूप सदा उनहार ।
मिथ्या वचन कहै नहि भूल, सोई सत्य धर्म तरु मूल ॥४॥
पर कामिन पर द्रव्य शृंगार, सो विरक्त वरतै छन्द छांड ।
अन्तर शुद्ध होय सरवंग, सोई शौच धर्म को अंग ॥५॥
मन समेत जे इन्द्री पंच, इनको शिथिल करै नहि रंच ।
त्रस थावर की रक्षा होय, संयम धर्म बखाना सोय ।६॥
ख्याति लाभ पूजा सब छंड, पंच करण को दीजै दंड ।
सो तप धर्म कह्यो जगसार, अनसनादि बारह परकार ॥७।
संयम धारी व्रती प्रधान, दीजै चहुं विधि उत्तम दान ।
तथा दुष्ट विकलप परिहार, त्याग धर्म बहु सुख दातार ॥८॥
बाहिज परिग्रह को परित्याग, अन्तर ममता रहै न लाग ।
आकिंचन यह धर्म महान, शिव पद दायक निश्चै जान ।९॥
बड़ी नार जननी सम जानो, लघु पुत्री सम बहिन बखानो ।
तज विकार मन वरतै जेह, ब्रम्हचर्य पद पूरण येह ॥१०॥

इति दश लक्षण धर्म

卐

समुच्चय–जयमाल–दशधर्म की

दोहा–दशलच्छन वंदो सदा, मन वांछित फलदाय ।
कहहुं आरती भारती, हम पर होहु सहाय ॥

उत्तम छिमा–जहां मन होई, अंतर बाहिर शत्रु न कोई ॥१॥
उत्तम मार्दव–विनय प्रकासै, नाना भेद ज्ञान सब भासै ॥२॥
उत्तम आर्जव–कपट मिटावै, दुरगति टार सुगति उपजावै ॥३॥
उत्तम सत्य–वचन मुख बोलै, सो प्रानी संसार न डोलै ॥४॥

उत्तम शौच-लोभ परिहारी, संतोषी गुण रतन भंडारी ॥५॥
उत्तम संयम-पालै ज्ञाता, नरभव सफल करै, ले साता ॥६॥
उत्तम तप-निरवांछित पालै, सो नर करम शत्रु को टालै ॥७॥
उत्तम त्याग-करै जो कोई, भोग भूमि-सुर-शिव सुख होई ॥८॥
उत्तम आकिंचन-व्रत धारै, परम समाधि दशा विसतारै ॥९॥

दोहा-करै करम की निरजरा, भव पींजरा विनाशि ।
अजर अमर पद को लहै 'द्यानत' सुख की राशि ॥

卐

सोलह कारण भावना

— दोहा —

सोलह कारण भावना, भावैं मुनि आनन्द ।
जिनको नाम स्वरूप कछु, लिखूं सकल सुख कंद ॥

चौपाई—

आठ दोष मद आठ मलीन, छै अनायत शठता तीन ।
ये पच्चीस मल वर्जित होय, दर्शन-शुद्धि कहावै सोय ॥१॥
रत्नत्रय धारी मुनिराय, दर्शन ज्ञान चरित समुदाय ।
इनकी विनय विषै परवीन, दुतिय भावना सो अमलीन ॥२॥
शील भाव धारै समचित्त, सहस अठारह अंग समेत ।
अतीचार नहिं लागे जहां, तृतीय भावना कहिये तहां ॥३॥
आगम कथित अर्थ अवधार, यथाशक्ति निज बुधि अनुसार ।
करै निरन्तर ज्ञान अभ्यास, तुरिय भावना कहिये तासु ॥४॥

दोहा –

धर्मी धर्म के फल विषै, वरतै प्रीति विशेष ।
यही भावना पंचमी, लिखी जिनागम देख ॥

चौपाई—

औषधि अभय ज्ञान आहार, महादान यह चार प्रकार।
शक्ति समान सदा निरवहै, छठी भावना धारक वहै ॥६॥

अनशन आदि मुक्ति दातार, उत्तम तप बारह परकार।
बल अनुसार करै जो कोय, सोई सातमी भावना होय ॥७॥

यती वर्ग को कारण पाय, विघन होत जो करै सहाय।
साधुसमाधि कहावै सोय, यही भावना अष्टम होय ॥८॥

दश विधि साधु जिनागम कहे, यथा पीड़ित रोगादिक गहे।
तिनकी जो सेवा सत्कार, यही भावना नौमी सार ॥९॥

परम-पूज्य-आतम अर्हन्त, अतुल अनंत चतुष्टयवंत।
तिनकी थुति नित पूजाभाव, दशमभावना भवजलनाव ॥१०॥

जिनवर कथित अर्थ अवधार, रचना करै अनेक प्रकार।
आचारज की भक्ति विधान, एकादशम भावना जान ॥११॥

विद्यादायक विद्यालीन, गुणगरिष्ठ पाठक परवीन।
तिनके चरण सदा चित रहे, बहुश्रुतभक्ति बारमी यहै ॥१२॥

भगवत-भाषित अर्थ अनूप, गणधर गूंथत ग्रन्थ सरूप।
तहाँ भक्ति बरतै अमलान, प्रवचनभक्ति तेरमी जान ॥१३॥

षट आवश्यक क्रिया विधान, इनकी करहुँ न कबहूँ हान।
सावधान बरतै थिर—चित्त, सो चौदहमी परम पवित्र ॥१४॥

कर तप तप पूजा शतभाव, प्रगट करै जिनधर्म प्रभाव।
सोई मारग—परभावना, यही पंद्रहमी भावना ॥१५॥

चार प्रकार संघ सो प्रीति, राखै गाय—वच्छ की रीति।
यही सोलमी सब सुखदाय, प्रवचन वात्सल अभिराय ॥१६॥

दोहा —

सोलह कारण भावना, परम पुण्य को खेत ।
भिन्न २ अरु सोलहो, तीर्थंकर पद देत ।।

बंध प्रकृति जिनमत विषैं, कही एक सौ बीस ।
सो सत्रह मिथ्यात में, बांधत हो निश दीस ।।

तीर्थङ्कर आहार दुक, तीन प्रकृति ये जान ।
इनको बंध मिथ्यात में, कह्यो नहीं भगवान ।।

तीन लोक तिहुं काल में, पूजा सम नहिं पुण्य ।
गृहवासी के मार्तहि, जिन पूजा दरशन ।।

यह थोड़ो सो कथन है, लेहु बहुत कर मान ।
नित उठ पूजा कीजिये, यही कह्यो परमान ।।

卐

सोलह कारण भावना की जयमाल

दोहा —

षोडश कारण गुण करै, हरै चतुर गति वास ।
पाप पुण्य सब नाशकै, ज्ञान भानु परकास ।।१।।

— चौपाई —

दरस विशुद्धि धरै जो कोई, ताको आवागमन न होई ।
विनय महा धारै जो प्रानी, शिव वनिता की सखी वखानी ।।२।।

शील सदा दिढ जो नर पालै, सो औरन की आपद टालै ।
ज्ञानाभ्यास करै मन माहीं, ताके मोह महातम नाहीं ।।३।।

जो संवेग भाव विस्तारैं, सुरग मुकति पद आप निहारैं ।
दान देय मन हरष विशेषै, इह भव जस परभव सुख देखै ॥४॥

जो तप तपै खिपै अभिलाषा, चूरै करम शिखर गुरु भाषा ।
साधुसमाधि सदा मन लावै, तिहुँजग भोग भोगि शिव जावैं ॥५॥

निशि दिन वैयावृत्य करैया, सो निहचै भव नीर तरैया ।
जो अरहंत भक्ति मन आनै, सो जन विषय कषाय न जानै ॥६॥

जो आचारज भक्ति करै हैं, सो निरमल आचार धरै हैं ।
बहु श्रुतवंत भक्ति जो करहिं, सो नर संपूरन श्रुति धरहिं ॥७॥

प्रवचनभक्ति करै जो ज्ञाता, लहै ज्ञान परमानन्द दाता ।
षट आवश्यक नित जो साधै, सोही रत्नत्रय आराधै ॥८॥

धर्मप्रभाव करे जो ज्ञानी, तिन शिव मारग रीति पिछानी ।
वात्सल्य अंग सदा जो ध्यावें, सो तीर्थंकर पदवी पावें ॥९॥

दोहा—

ऐसी सोलह भावना, सहित धरै व्रत जोय ।
देव इन्द्र नर वंद्य पद, द्यानत शिव पद होय ॥

तारण-त्रिवेणी

श्री पंडित पूजा जी

[illegible] ।
[illegible] ॥१॥

ओम् [illegible] है [illegible] रहेगा, [illegible] ।
[illegible], आनन्द धाम है ओम [illegible], शुद्ध आकार ॥
ओम् पंच परमेष्ठी [illegible], [illegible] ।
केवल-ज्ञान-निकुंज ओम है, ओम अमर, [illegible] ॥१॥

निश्चय नय जानंते, शुद्ध तत्व विधीयते ।
ममात्मा गुणं शुद्धं, नमस्कारं शाश्वतं ध्रुवं ॥२॥

जिन्हें वस्तु के सत्, चित् ज्ञायक, या निश्चय नय का है ज्ञान ।
वही अनुभवी, पारखि करते, निज स्वरूप की सत् पहिचान ॥
अन्तस्तल - आसीन आत्मा, ही है अपना देव ललाम ।
आत्मद्रव्य का अनुभव करना, ही है सच्चा, अचल प्रणाम ॥२॥

ॐ नमः विंदते योगी, सिद्धं भवत् शाश्वतं ।
पंडितो सोपि जानंते, देवपूजा विधीयते ॥३॥

योगीजन नित ओम् नमः का, शुद्ध ध्यान ही धरते हैं ।
'सोऽहं' पद पर चढ़कर ही वे, प्राप्त सिद्ध-पद करते हैं ॥
'ओम् नमः' जपते जपते जो, निज स्वरूप में रम जाता ।
वही देव पूजा करता है, पंडित वह ही कहलाता ॥३॥

देवं गुरुं श्रुतं वन्दे, धर्मशुद्धं च विन्दते ।
तिअर्थं अर्थलोकं च, स्नानं च शुद्ध जल ।८॥

आतम ही है देव निरंजन, आतम ही सद्गुरु भाई ।
आतम शास्त्र, धर्म आतम ही, तीर्थ आतम ही सुखदाई ॥
आत्म-मनन ही है रत्नत्रय, पूरित अवगाहन सुखधाम ।
ऐसे देव, शास्त्र, सद्गुरुवर, धर्म तीर्थ को सतत प्रणाम ॥८॥

चेतना लक्षणो धर्मो, चेतिगंत सदा बुधं ।
ध्यानस्य जल शुद्धं, ज्ञान स्नान पंडितः ॥९॥

चिदानन्द, ध्रुव, शुद्ध आतमा, की चेतनता है पहिचान ।
बुद्धिमान जन नित्य निरन्तर, धरते हैं उस ही का ध्यान ॥
नदी, सरोवर में करते हैं, अवगाहन जग अज्ञानी ।
आत्म-ज्ञान-जल से प्रक्षालन, करते सत्पंडित ज्ञानी ॥९॥

शुद्धतत्वं च वेदंते, त्रिभुवनम् ज्ञानेश्वरं ।
ज्ञानं मयं जलं शुद्धं, स्नानं ज्ञान पंडितः ॥१०॥

हस्तमलकवत् जिसको तीनों, भुवन, चराचर प्राणी हैं ।
उसी ब्रह्म को ध्याते हैं बस, जो बुधजन, विज्ञानी हैं ॥
शुद्ध आत्म है स्वच्छ सरोवर, कल कल करता जिसमें ज्ञान ।
इसी ज्ञान रूपी जल में नित, पंडितजन करते (हैं) स्नान ॥१०॥

सम्यक्तस्य जलं शुद्धं, संपूर्ण सर पूरितं ।
स्नानं पिवत गणधरनं, ज्ञानं सरनतं ध्रुवं ॥११॥

सम्यग्दर्शन रूपी जिसमें, भरा हुआ है नीर अगम्य ।
ऐसा है वह परम ब्रह्म का, भव्यो ! सरवर अविचल रम्य ॥
महा मुनीश्वर श्री गणधर जी, जिनकी शरण अनेकों ज्ञान ।
इस सर में ही अवगाहन कर, करते इसका ही जल पान ॥११॥

शुद्धात्मा चेतनाभावं, शुद्ध दृष्टि समं ध्रुवं ।
शुद्धभाव स्थिरीभूत्वा, ज्ञानं स्नान पंडितः ॥१२॥

शुद्ध आत्मा है, हे भव्यो! सब चैतन्य भाव का पुंज ।
सम्यग्दर्शन से आभूषित, मोक्ष प्रदाता, ज्ञान-निकुंज ॥
निश्चल मन से इसी तत्व का, शुद्ध गुणों का करना ध्यान ।
पंडित पुरुषों का बस यह ही, प्रक्षालन है स्नान महान ॥१२॥

प्रक्षालितं त्रति मिथ्यात्वं, शल्य त्रियं निकंदनं ।
कुज्ञान राग दोषं च, प्रक्षालितं अशुभ भावना ॥१३॥

धुल जाते इस ज्ञान-नीर से, तीनों ही मिथ्यात्व समूल ।
तीनों शल्यों को विनष्ट कर, ज्ञान बना देता यह धूल ॥
अशुभ भावनायें भी सारी, इस जल से धुल जाती हैं ।
राग द्वेष, कुज्ञान-कालिमा, पास न रहने पाती हैं ॥१३॥

कषाय चत्रु अनंतानं, पुण्य पाप प्रक्षालितं ।
प्रक्षालितं कर्म दुष्टं च, ज्ञानं स्नान पंडितः ॥१४॥

पुण्य पाप दोनों रिपुओं को, क्षय कर देता है यह नीर ।
मलिन कषायें गिर जाती हैं, देख सलिल से इसके तीर ॥
कर्म-मूरति जो मैला था, कर देता यह जल-मल चूर ।
ऐसा है यह ज्ञान-सरोवर, प्रक्षालन मंगल परिपूर ॥१४॥

प्रक्षालितं मनश्चपल, त्रिविधि कर्म प्रक्षालितं ।
पंडितो वस्त्र संयुक्तं, आभरणं भूषण क्रियते ॥१५॥

चंचल मन भी ज्ञान-नीर से, धुल निर्मल हो जाता है ।
द्रव्य, भाव, नोकर्म रूप भी, यहां न फिर टिक पाता है ॥
[illegible] ।
इस ज्ञानोदक पावन चखे, हैं उसके अनुरूप [illegible] ॥१५॥

[illegible] न [illegible], [illegible] ।
[illegible] ॥१६॥

[illegible] ।
[illegible] ॥
[illegible] ॥
[illegible] ॥१६॥

दृष्टतं शुद्ध दृष्टी च, मिथ्यादृष्टि च [illegible] ।
असत्यं अनृतं न दृष्टन्ते, अचेत दृष्टि न दीयते ॥१७॥

जो ज्ञानी-जन करते रहते, ज्ञान-नीर में अवगाहन ।
परमात्मा उनका दर्पण-वत, हो जाता निर्मल पावन ॥
मिथ्यादर्शन को क्षय कर के, शुद्धदृष्टि हो जाते हैं ।
असत, अचेतन, अनृतदृष्टि से, फिर न लुभा वे पाते हैं ॥१७॥

दृष्टतं शुद्ध समयं च, सम्यक्त्वं शुद्धं ध्रुवं ।
ज्ञानं मय च संपूर्ण, ममलदृष्टि सदा बुधैः । १८॥

ज्ञान-नीर के अवगाहन से, अमत् भाव मिट जाता है ।
परम शुद्ध सम्यक्त्व मात्र ही, फिर हिय में दिख पाता है ॥
शुद्ध बुद्ध ही दिखते हैं फिर, आंखो में प्रत्येक घड़ी ।
दिखता है बस यही ज्ञान की, अन्तर मे मच रही झड़ी ॥१८॥

लोकमूढ़ं न दृष्टंते देव, पाखंड न दृष्टते ।
अनायतन मद अष्टं च, शंकादि अष्ट दृष्टते ॥१९॥

ज्ञान नीर से मिट जाता है, तीन मूढ़ताओं का ताप ।
अष्ट मदों का मन-मन्दिर में, फिर न शेष रहता सन्ताप ॥
छह अनायतन डरते हैं फिर, नहीं हृदय मे आते हैं ।
अष्ट दोष भी तस्कर नाईं, देख इसे छिप जाते हैं ॥१९॥

अदेव अज्ञान मूढ़ं च, अगुरु अपूज्य पूजतं ।
मिथ्यात्व सकल जानंते, पूजा संसार भाजनं ॥२४॥

'देव' किन्तु देवत्वहीन जो वे 'अदेव' कहलाते हैं ।
वही 'अगुरु' जो गुरु बनकर, [illegible] जाल फंसाते हैं ॥
ऐसे इन 'अदेव' 'अगुरों' की, पूजा है मिथ्यात्व महान ।
जो इनकी पूजा करते वे, भव भव में फिरते नादान ॥२४॥

तेनाह पूज शुद्धं च, शुद्ध तत्व प्रकाशकं ।
पंडितो वंदना पूजा, मुक्तिगमनं न संशयः ॥२५॥

सप्त तत्व के पुंजों का नित, करता है जो प्रतिपादन ।
वही ब्रह्म है पूज्य, भविगण ! करो उसी का आराधन ॥
अगुरु, अदेवादिक की पूजा, आवागमन बढ़ाता है ।
आत्म-अर्चना, आत्म-वंदना, मुक्ति-नगर पहुंचाता है ॥२५॥

प्रति इन्द्र प्रति पूर्णस्य, शुद्धात्मा शुद्ध भावना ।
शुद्धार्थं शुद्ध समयं च, प्रति इन्द्रं शुद्ध दृष्टितं ॥२६॥

इन्द्र कौन ? निज चेतन ही तो, सत्य इन्द्र भव्यो स्वयमेव ।
वही एक है शुद्ध भावना, वही परम देवों का देव ॥
वही ब्रह्म, शुचि शुद्ध अर्थ है, वही समय निर्मल, पावन ।
उसी शुद्ध चिद्रूप देव का, करो चिंतवन मनभावन ॥२६॥

दाताऽरु दान शुद्धं च, पूजा आचरण संयुतं ।
शुद्धसम्यक्त्वहृदयं यस्य, स्थिरं शुद्ध भावना ॥२७॥

जिस जन के हृदयस्थल में है, सम्यग्दर्शन रत्न महान ।
अपने ही मे आप लीन जो, जिसे न सपने में पर ध्यान ॥
आत्मद्रव्य का पूजन करता, कर जो नव आदर सत्कार ।
परमब्रह्म को वही ज्ञान का, देता महा दान दातार ॥२७॥

शुद्ध दृष्टी च दृष्टंते, सार्धं ज्ञानमयं ध्रुवं ।
शुद्धतत्वं च आराध्यं, वंदना पूजा विधीयते ॥२८॥

चिदानंद के ज्ञान-गुणों के, अनुभव में होना तल्लीन ।
यही एक वन्दन है सच्चा, नहीं वन्दना और प्रवीण ॥
शुद्ध आत्मा का निर्मल मन से, करना सच्चा आराधन ।
यही एक बस पूजा सच्ची, यही सत्य बस अभिवादन ॥२८॥

संघस्य चत्रु संघस्य, भावना शुद्धात्मनां ।
समयसारस्य शुद्धस्य, जिनोक्तं सार्धं ध्रुवं ॥२९॥

मुनी, आर्यिका श्रावक-दम्पति, भी क्यों करें इतर चर्चा ?
निजानन्द-रत होकर वे भी, करें आत्म की ही अर्चा ॥
शुद्ध आतमा ही बस जग में, सारभूत है हे भाई !
जिनप्रभु कहते, आत्मध्यान ही, एक मात्र है सुखदाई ॥२९॥

सार्धं च सप्ततत्वानं, दर्वकाया पदार्थकं ।
चेतनाशुद्धध्रुवं निश्चय, उक्तं च केवलं जिनं ॥३०॥

सप्त तत्व को देखो चाहे, छह द्रव्यों का सारा कुंज ।
नौ पदार्थ, पंचास्तिकाय का, चाहे सकल विलोको पुंज ॥
इन सब में पर जीव-तत्व ही, सार पाओगे विज्ञानी ।
आत्मतत्व ही सारभूत है, कहती यह ही जिनवाणी ॥३०॥

मिथ्या तिक्त त्रतियं च, कुज्ञान त्रति तिक्तयं ।
शुद्ध भाव शुद्ध समय च, सार्धं भव्य लोकयः ॥३१॥

दर्शन मोह तीन हैं भव्यो, छोड़ो इनके सकल भेद ।
कुमति, कुश्रुत, कुअवधि, कुज्ञानों, में भी हीन दशा [illegible] ॥
निर्मल भावों से तुम निशिदिन, करो ज्ञान का निर्मल ध्यान ।
आत्म ध्यान ही भव सागर के, तरने को है पोत महान ॥३१॥

[illegible] ।
[illegible] ॥३२॥

[illegible] ।
[illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥३२॥

॥ इति समाप्तम् ॥

卐

श्री मालारोहण जी

ॐकार वेदंति शुद्धात्म तत्यं, प्रणमामि नित्यं तत्वार्थ सार्धं ।
ज्ञानं मयं सम्यकदर्शनोत्यं, सम्यक्त्वचरणं चेतन्यरूपं ॥१॥

ओङ्कार रूपी वेदान्त ही है, रे तत्व निर्मल शुद्धात्मा का ।
ओंकार रत्नत्रय की मंजूषा, ओंकार ही द्वार परमात्मा का ॥
ओंकार ही सार तत्वार्थ का है, ओंकार चैतन्य प्रतिमाभिराम ।
ओंकार में विश्व, ओंकार जगमें, ओंकार को नित्य मेरा प्रणाम ॥१॥

नमामि भक्तं श्रीवीरनाथं, न तं चतुष्टं तं व्यक्त रूवं ।
मालागुणं वोच्छं तत्वप्रबोधं, नमाम्यहं केवलि नंत सिद्धं ॥२॥

जोऽनंत चतुष्टय के निकेतन, जिनके न ढिग अष्ट कर्मारि बसते ।
ऐसे जिनेश्वर श्री वीर प्रभु को, मेरा युगल पाणि से हो नमस्ते ॥
मैं केवली, सिद्ध, परमेष्ठियों को, भी भक्ति से आज मस्तक नवाता ।
जो सप्त तत्वों की है प्रकाशक, उस मालिका के गुण आज गाता ॥२॥

श्री केवलं ज्ञान त्रिलोकनन्तं, श्रुत प्रकाशं [illegible] नन्तं ।
सम्यक्त्व ज्ञान चर नंत [illegible], [illegible] दर्शनेत्वं ॥७॥

[illegible] में जिस [illegible] रे! [illegible] है [illegible] प्यारा ।
जिसके [illegible] में [illegible] प्यारा ॥
सम्यक्त्व की पूर्ण [illegible] है जो, है जो [illegible] आनन्द [illegible] ।
तत्वार्थ के सार [illegible] को, देखो, [illegible] ॥७॥

सम्यक्त्व शुद्ध हृदयं समस्तं, [illegible] गुणमाला गुणनन्त वीर्यं ।
देवाधिदेवं गुरु ग्रन्थ मुक्तं, धर्मं अहिंसा क्षमा उत्तमध्य ॥८॥

सम्यक्त्व की [illegible] में, जिनके हृदय-हार हैं जगमगाते ।
पुण्यात्मा, धीवर जीव ही पर, उनके गुणों को कर व्यक्त पाते ॥
जिनराज ही देव हैं ज्ञानियों के, गुरु ग्रन्थ-विनिर्मुक्त, कल्याणकारी ।
है धर्म परमोच्च उत्तम अहिंसा, जिसमें विहँसता क्षमा शक्ति सारी ॥८॥

तत्वार्थं सार्धं त्वं दर्शनेत्वं, मलं विमुक्तं सम्यक्त्व शुद्धं ।
ज्ञानं गुणं चरणस्य शुद्धस्य वीर्यं, नमामि नित्यं शुद्धात्म तत्वं ॥९॥

तत्वार्थ के सार को तुम निरखो, जो शुद्ध सम्यक्त्व का बन्धु ! प्याला ।
परिपूर्ण जो शुद्धतम ज्ञान से है, जो है अतुल शक्ति चारित्र वाला ॥
यह सार प्यारा शुद्धात्मा है, चिर सुख सदन का अनुपम सु साधन ।
ऐसे अमोलक विज्ञानघन को, मैं नित्य करता सहस्राभिवादन ॥९॥

जे सप्त तत्व षट दर्वं युक्तं, पदार्थ काया गुण चेतनेत्वं ।
विश्वं प्रकाशं तत्वान वेदं, श्रुत देव देवं शुद्धात्म तत्वं ।१०॥

जो सप्त तत्वों को व्यक्त करता, षट द्रव्य जिसको हस्तामलक हैं ।
पंचास्तिकाया औ नौ पदारथ, जिसमें निरन्तर देते झलक हैं ॥
चैतन्यता से है जो विभूषित, त्रिभुवन-तली को जो जगमगाता ।
श्रुत-ज्ञानरूपी उस आत्मा में हो, रत रह, करो आत्म-कल्याण भ्राता ॥१०।

शुद्धं प्रकाशं शुद्धात्मतत्त्वं, समस्त संकल्प विकल्प [illegible] ।
रत्नत्रयालंकृत सत्स्वरूपं, तत्वार्थसार्धं [illegible] ॥१५॥

शुद्धात्मा-तत्त्व का [illegible] जीवो, है ज्ञान, शिव, मोक्ष, निर्मल प्रकाश ।
संकल्प [illegible] सर्वथा, [illegible] नहीं [illegible] भी है निवास ॥
शुद्धात्मा का [illegible] स्वरूप, है रत्नत्रय से [illegible] ।
तत्वार्थ का सार भी [illegible] है, भजो भजो [illegible] के तुम पुजारी ॥१५॥

जे धर्म लीना गुण चेतनेतां, ते दुःख हीना जिनशुद्धदृष्टी ।
संप्रोय तत्वं सोई ज्ञान रूपं, ब्रजंति मोक्षं क्षणमेक एतं ॥१६॥

शुद्धात्मा के चैतन्य गुण में, जो नर निरन्तर तल्लीन रहते ।
वे विज्ञ ही हैं, जिन शुद्ध दृष्टी, संसार दुख भार मे वे न बहते ॥
जीवादि तत्वों का ज्ञान करके, होते स्वरूपस्थ वे आत्मध्यानी ।
कर्मारि-दल का विध्वंस करके, वरते वही वे शिवा-सी भवानी ॥१६॥

जे शुद्ध दृष्टी सम्यक्त्व शुद्धं, माला गुणं कंठ हृदय अरुलितं ।
तत्वार्थ सार्धं च करोति नित्य, संसार मुक्तं शिव सौख्य वीर्यं ॥१७

जो शुद्ध दृष्टी शुद्धात्म-प्रेमी, नित पालते हैं सम्यक्त्व पावन ।
अपने हृदयस्थल पर धारते हैं, जो यह गुणों की माला सुहावन ॥
वे भव्य जन ही पीते निरन्तर, तत्वार्थ के सार का चारु प्याला ।
संसार-सागर से पार होकर, पाते वही जीव चिर सौख्य-शाला ॥१७॥

ज्ञानं गुणं माल सुनिर्मलेत्वं, संक्षेपगुथितं तुव गुण अनन्तं ।
रत्नत्रियालंकृत सस्स्वरूपं, तत्वार्थ सार्धं कथितं जिनेन्द्रैः ॥१८॥

शुद्धात्मा की गुणमालिका में, वाणी अगोचर है पुष्प भाई ।
सक्षेप मे ही, पर पुष्प चुन चुन, यह दिव्य माला मैंने बनाई ॥
आगम, पुराणों से तुम सुनोगे, बस एक ही वाक्य परमात्मा का ।
रत्नत्रयाच्छन्न है भव्य जीवो, शशि-सा सुरक्षण शुद्धात्मा का ॥१८॥

श्रेनीय पृच्छंति श्री वीरनाथं, मालाश्रियं मागंत नेहचरं ।
धरणेन्द्र इन्द्र गन्धर्व जक्षं, नरनाह चक्रं विद्या धरेन्द्रं ॥१९॥

श्री वीर प्रभु से श्रेणिक नृपति ने, पूछा सभा में मस्तक नवाकर ।
इस मालिका को त्रिभुवन तटी पर, किसने विलोका कहो तो गुणागार ?
क्या इन्द्र, धरणेन्द्र, गन्धर्व ने भी, देखी कभी नाथ यह दिव्यमाला ?
या यक्ष, चक्रेश, विद्याधरों ने, पाया कभी नाथ यह मुक्ति-माला ॥१९॥

किं दिप्त रत्नं बहुवे अनन्तं, किं धन अनंतं बहुभेय युक्तं ।
किं त्यक्त राज्यं वनवासलेत्वं, किं तत्व वेत्तं बहुवे अनंतं ॥२०॥

जिनके भवन में हीरे जवाहिर, या द्रव्य की लग रही राशि भारी ।
ऐसे कुबेरों ने भी प्रभो क्या, देखी कभी माल यह सौख्यकारी ॥
या राज्य को त्याग जोगी बने जो, उनने विलोकी यह माल प्यारी ।
या सप्त तत्वों के पंडितों ने, देखी गुणावलि यह मोक्षगामी ॥२०॥

श्री वीरनाथं उक्तं च शुद्धं, श्रुणु श्रेण राजा माला गुणार्थं ।
किं रत्न किं अर्थं किं राजनाथं, किं तत्व वेत्त नहि माल दृष्टं ॥२१॥

बोले जिनेश्वर श्री मुख-कमल से 'श्रेणिक सुनो मालिका की कहानी ।
इस आत्म गुण की सुगनावली के, दर्शन महज में न हों प्राप्त प्राणी ।
ना तो कभी रत्नधन-धारियों ने, श्रेणिक सुनो मालिका यह निहारी ।
ना मालिका को उनने विलोका, जो राज्य में रत थे [illegible] ॥२१॥

किं रत्न कायं बहुविहि अनंतं, किं अर्थं अर्थं नहि कोपि कार्यं ।
किं राज चक्रं किं काम रूप, किं तत्व वेदं बिन शुद्ध दृष्टिं ॥२२॥

'इस माल के दर्शनों से न तो भूप, रत्नादि वैभव की राशि पाते ।
ना [illegible] के राज्य का धन, हाँ इस गुण [illegible] ॥
ना तो इसे देख [illegible] पाये, ना [illegible] सुहाते !
दर्शन यदी कर सके मालिका का, वे तो सुनो शुद्ध सम्यक्त्व दृष्टि [illegible]॥'

जिन उत्त सद्दहनं, अप्पा परमप्प सुद्ध संमत्तं च ।

परमप्पा उवएसं, तम्म सुभावेन कम्म विलयन्ती ॥३१॥

'जिनो ! [illegible] हो, है जग का परमेश्वर ।
करते हैं [illegible] सुना जो, [illegible] ॥
जो जन, जिन-पद पर [illegible], [illegible] ।
कर्म काट, [illegible] ॥३१॥

जिनदिट्ठ उत्त सुद्ध, जिनयति कम्मान तिविह जोगेन ।

न्यान अन्मोय ममल, ममल सरूवं च मुक्ति गमनं च ॥३२॥

जैसा जिनने देखा, जैसा वचन-अमिय बरसाया ।
वैसे ही शुद्धातम तत्व का, मैंने रूप दिखाया ॥
त्रिविध योग से ममल करेंगे, जो आतम आराधन ।
कर्म जीत, वे ज्ञानानन्द हो, पायेंगे शिव पावन ॥३२॥

॥ इति समाप्तम् ॥

॥ इतिः—श्री तारण त्रिवेणी श्रीजिन तारणतरण विरचित समाप्तम् ॥

卐

श्रावकाचार की चौदह गाथाएं

देव को नमस्कार—

देव देवं नमस्कृत्तं, लोकालोक प्रकाशकम् ।
त्रिलोकं अर्थं ज्योतिः, ऊंवकारं च विंदते ॥ १ ॥
ऊंवं ह्रियं श्रियं चिंते, शुद्ध सद्भाव पूरितम् ।
सम्पूर्ण सुयं रूपं, रूपातीत विंदुसंयुतम् ॥ २ ॥
नमामि सतत भक्त्या, अनादि सादि शुद्धये ।
प्रति पूर्णति अर्थं शुद्धं, पंच दीप्ति नमाम्यहम् ॥ ३ ॥

श्री बृहत् चैत्यालय-मंदिर विधी

१—श्री समय पाहुड़ जी ग्रन्थ को विराजमान करके [illegible] तीनों [illegible]।

२—कोई भी एक फूलना पढ़ना।

३—दीक्षा भक्ति तथा १ भजन मंगल आचरण फूलना के करना। [illegible] फूलना के समय १ आरती [illegible] करना।

४—भजनों के बाद—खड़े होकर श्री वाणी जी को (जो श्री [illegible] हों) सिंहासन पर विराजमान करके—तारण पंथ [illegible] दिवस में तीनों बत्तीसी जी में से तीन तीन गाथाओं को व श्री ममल पाहुड़ जी ग्रन्थ की नं० ८७ का धर्मोधारण फूलना में से [illegible] तक का गाथा पढ़ना (इसी तरह १० दिवस में पूरी तीनों बत्तीसी व धर्मोधारण फूलना को पूरा कर लेना व ग्यारहवें दिन भादों सुदी पूर्णिमा को तिलक महोत्सव की समाप्ति अच्छे धर्म प्रभावना पूर्वक करना।)

श्री धर्मोपदेश अतुल, अनिर्वचनीय और महाशीर्ष कोई केवली पुरुष कहने सामर्थ्य, त्रैलोक्यनाथ, अचिन्त्य चिन्तामणि, चिन्ता कर रहित हैं।

चिन्त्यं नाशनं ज्ञानं, चिन्त्यं नाशनं मलम्।
चिन्त्य नाशनं मनः यावत भवेत् नाशयं चिन्ताः॥

तथा—चिंता उपजावन हारी ममता और आशा कर सर्वथा रहित हैं। यथाशक्य श्रद्धानुसार भव्य जीवन को कल्पवृक्ष की नाई सदा मंगल करन हारे वे भगवान निरेच्छ, निर्दोष, और स्वभाव ही से अद्वितीय दयालु हैं। ऐसे श्री जिनेन्द्र भगवान स्वयं ज्ञाता और सिद्ध के जावन हारे, तीन ज्ञान मय उत्पन्न होय हैं। परिहरें लिङ्ग-जो तीन लिङ्ग को परिहार कर फिर जन्म नहीं धरें हैं।

अचिन्त्य व्यक्त रूपाय, निर्गुणान् महात्मने।
जगत सर्व आधार मूर्ति ब्रह्मने नमः॥

ऐसे ब्रह्म स्वरूप मूर्ति को मैं नमस्कार करता हूँ। फिर भगवान का उपदेश्या धर्म कैसा है?

[illegible]

[illegible] "चौबीसी [illegible]" ।

वर्तमान चौबीसी

श्री ऋषभ अजित संभव अभिनंदन सुमति पद्मप्रभु छठे जिनेश्वर ।
सप्तम तीर्थंकर भये हैं सुपार्श्व चन्द्रप्रभु आठम हैं जिनेश्वर ॥
पुष्पदंत शीतल श्रेयांस वासुपूज्य अरु विमल अनंत ।
धर्मनाथ वंदत अविनीश्वर सोलह कारण शांति जिनेश्वर ॥
कुन्थु अरह मल्लि मुनिसुव्रत बीसा नमियो अष्टम सिद्ध इकबीसा ।
नेमिनाथ साहसि गिरि नेम सहनशील बाईस परीष ॥
पारसनाथ तीर्थंकर तेईस वर्द्धमान जिनवर चौबीस ।
चार जिनंद चहूँ दिशि गये बीस संमेदशिखिर पर गये ॥
आदिनाथ कैलाशे गये वासुपूज्य चंपापुर गये ।
नेमिनाथ स्वामी गिरनार पावापुरी वीर जिनराज ॥
दो धवला दो श्यामला वीर, दो जिनवर आरक्त शरीर ।
हरे वरण दो हो कुलवंत, हेमवरण सोला इकवंत ॥
चौबीस तीर्थङ्कर मोक्षे गये, दश कोड़ाकोडी काल बिल भये ।
भये सिद्ध अरु होय अनंत, जे वंदो चौबीस जिनद ॥
वंदों तीर्थङ्कर चौबीस, वदो सिद्ध वसें जगदीस ।
वंदों आचारज उवझाय, वंदों साधु गुरुन के पांय ॥

— दोहा —

देव धरम गुरु को नमो, नमो सिद्ध शिव क्षेत्र ।
विदेह क्षेत्र में जिन नमो, जिनके नाम विशेष ॥

संसार सागर तरण तारण गुरु जहाज विशेखियो ।
जग मांहि गुरु सम कहे बनारसी, और कोउ न देखियो ॥

इस प्रकार जो [illegible] पाती [illegible] श्रावक और नारकी के [illegible] के आयु बंध [illegible] हुए समोशरण में जा रहे थे [illegible] के विचार था कि जिस विशेष अज्ञान से मुनिराज के गले में सांप डालकर ७वें नर्क की गति बांध लो था। जब आप समोशरण के पास पहुंचे मानस्तंभ देखते ही आपके हृदय का मान दूर हो गया। [illegible] से [illegible] पधारे भये, जय-जय करत सभा में गये, [illegible] जिनेन्द्र देव निहारे, जन्म-जन्म के पाप नशाये, दोउ कर जोड़ प्रदक्षिणा दई, निर्मल मति राजा की भई"। यही समय था जब राजा श्रेणिक के भीतर भगवान के प्रति अत्यन्त-गाढ़ श्रद्धा उत्पन्न हो रही थी और अपने उस मुनिराज के गले में सांप डालने वाले कार्य का भीतर ही भीतर महान् पश्चात्ताप हो रहा था कि जिसके फलस्वरूप आपकी वह ७वें नर्क की गति बंध टूट कर पहले नर्क के सीमंत नाम के पहले पाथड़े के पहले विले में जाने की रह गई जिसकी आयु १७६० वर्ष की भावसार ग्रंथ तथा अपराजित स्वामी कृत त्रिलोक सार ग्रन्थ में कही है। तथा पहले नर्क के पहले पाथड़े के पहले विले में जाने का प्रमाण नेमचन्द्राचार्य कृत चौंधीसठाणा जी ग्रन्थ में कहा है। इस तरह राजा श्रेणिक अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति से जब भगवान की प्रदक्षिणा दे रहे थे और जैनधर्म की प्रभावना तथा अतिशय देख जैनधर्म पर गाढ़-श्रद्धा हृदय मे उत्पन्न हो रही थी इसी समय आपको क्षायक सम्यक्त्व की प्राप्ति हो गई और आप भगवान के सन्मुख खड़े होकर विनती करते हुए।

जय जय स्वामी, त्रिभुवन नाथ, कृपा करो मोहि जान अनाथ ।
हों अनाथ भटको संसार, भ्रमतन कबहूँ न पायो पार ॥
तासे शरण आयो मैं सेव, मुझ दुःख दूर करो जिनदेव ।
कर्म निकंदन महिमा सार, अशरण शरण सुयश विस्तार ॥

अवलवली

जय गुरु अवल वली ववन कमल, वचन जिन ध्रुव तेरे ।
अन्मोय शुद्धं रंग रमण, चेत रे मण मेरे ॥

जय तार तरण समय तारण, ग्यान ध्यान विवदे ।
आचरण चरण शुद्धं, सर्वग्य देव गुरु पाये ॥

जय नंदा आनंद, चेयानंद सहज परमानंदे ।
परमाण ध्यान स्वयं, विमल तीर्थङ्कर नाम वंदे ॥

जय कमल कमल, उवन रमण रंज रमण राये ।
जय देव दीप्ति स्वय, दीपति मुक्ति रमण गाये ॥

卐

गुरु तोहि ध्यावत सुख अनन्ता

स्वामी तारण जिनदेवा ।

उत्वन रंज रमण नंद जय मुक्ति दायक देवा ॥
काऊण णमुक्कारं जिणवर वसहस्स वड्ढमाणस्स ।
दंसणमग्गं वोच्छामि, जहाकम्मं समासेण ।
सव्वण्हू सव्वदंसी, णिम्मोहा वीयराय परमेट्ठी ।
वन्दित्तु तिजगवन्दा अरहंता भव्व जीवेहि ॥
सयला जगुत्तमेहि, दंसणणाणेण सुद्धचरणाणं ।
णिग्गंथ वीयराया जिणमग्गे एरिसा पडिमा ॥
सत्तभंगे पविदित, चोद्दसपुव्व [illegible] [illegible] ।
एदे गुणगणजुत्तो [illegible] [illegible] [illegible] ॥
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।

[illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ।

卐

श्री नन्त दिप्ति की आरती

जय-जय नन्त-दिप्ति जी की आरती कीजे ।
आज देव जू को मंगल है ॥
जय-जय आरती अपने देव की कीजे । आज देव जू को मंगल है ॥
जय-जय आरती तारन देव की कीजे । आज देव जू को मंगल है ॥
जय-जय आरती श्री जिनवाणी की कीजे । आज देव जू को मंगल है ॥
जय-जय भली आरती इन्द्र प्रचारो । आज देव जू को मंगल है ॥
जय-जय सोने के थार मोतिन के पुन्जन ।
आरती अपने देव की कीजे, आज देव जू को मंगल है ॥
जय-जय कनक दीप कृष्णा गुरु वाती ।
आरती अपने देव की कीजे आज देव जू को मंगल है ॥
जय-जय आरती तारन गुरु की कीजे । आज देव जू को मंगल है ॥
जय-जय आरती श्री जिनवाणी की कीजे, आज देव जू को मंगल है
जय-जय आरती नन्त दिप्ति की कीजे । आज देव जू को मंगल है ॥

[illegible] जानवे को [illegible] मानवे को ।
सूरज [illegible] को परम प्रमाणी है ॥
अनुभव बतावने को जीव के जतावने को ।
काहू न सतावने को भव्य उर आनी है ।
जहाँ तहाँ तारवे को पार के उतारवे को ।
सुख विस्तारवे को यही जिनवाणी है ॥

दोहा—

जिनवाणी के ज्ञान से, सूझे लोकालोक ।
सो वाणी मस्तक धरूं, सदा देहूँ पदधोक ॥

卐

—: ग्यारह विनती :—

(खुशालचन्द)

अहो आदि[१] गुरुदेव, पूजों चरण तिहारे ॥
अजितनाथ[२] जी की सेव मन-वच-तन उर धारे ।
संभवनाथ[३] जिनेन्द्र में तुम्हरे गुण गाऊं ।
अभिनंदन[४] महाराज, चरणन शीश नवाऊँ ॥
सुमतिनाथ[५] महाराज सुमति करो मति मोरी ।
पद्मप्रभ[६] महाराज आयो शरण तिहारी ॥
श्रीसुपारश्व[७] देव, निर्मल बुधि के धारी ।
चन्द्रप्रभ[८] भगवान चन्द्रपुरी अवतारी ॥
पुष्पदंत[९] महाराज सब राजन के राजा ।
शीतलनाथ[१०] जिनेन्द्र तारणतरण जिहाजा ॥

श्रेयांसनाथ११ महाराज मैं हों दास तिहारो ।
वासुपूज्य१२ महाराज भव-दधि पार उतारो ॥
विमलनाथ१३ महाराज विमल बुद्धि मोहि दीजे ।
अनन्तनाथ१४ महाराज सेवक अपनों कीजे ॥
धर्मनाथ१५ महाराज धर्म बुद्धि के धारी ।
शांतिनाथ१६ महाराज तीनों पदवी धारी ॥
कुन्थुनाथ१७ महाराज कुन्थु जीव प्रतिपाले ।
अरहनाथ१८ महाराज ईंधन दुख सब मारे ॥
मल्लिनाथ१९ महाराज मल्ल काम-दल चूरे ।
मुनिसुव्रत२० भगवान गुण अनन्त कर पूरे ॥
नाथ नमो नमिदेव२१ हरिये जगत उपाधी ।
नेमिनाथ२२ भगवान तप लीनो तज नारी ॥
पारसनाथ२३ जिनेन्द्र नाग जुगल सुख दीनो ।
वर्द्धमान२४ जिनदेव सुरपति अर्चन कीनो ॥
चौबीसों महाराज सब ही नामी नामी ।
सब ही हैं गुणवंत शील शोभा धामी ॥
कल्याणक जिनवर सब ही के मन मानो ।
दर्शन ज्ञान अनन्त सुख अनन्त बल मानो ॥
शक्ति भये सुर—इन्द्र अरु गणधर से ज्ञानी ।
मैं कैसे पाऊँ पार बुधि थोड़ी उर आनी ॥
साधन के हो नाथ विनती मोरी लीजे ।
विनवै दास 'कुन्दन' का मम दर्शन दीजे ॥

— दोहा :—

चौबीसों महाराज की स्तुति करी बनाय ।
याके ध्यावें सुख लहें दुःख दूर हो जाँय ॥

जैसी महिमा तुम विषैं और धरै नहिं कोय ।
सूरज में जो ज्योति है नहिं तारागण सोय ॥

सुख देना दुःख मेटना यही तुम्हारो बान ।
मो गरीब की बीनती सुन लीजो भगवान ॥

तीन लोक तिहुं काल में पूजा सम नहिं पुण्य ।
बड़भागी को प्राप्त हो जिन पूजा दर्शन ॥

यह थोड़ो सो कथन है लेहु बहुत कर मान ।
नित उठ पूजा कीजिये यही बड़ो प्रमान ॥

卐

प्रभु पतित पावन

प्रभु पतित पावन मैं अपावन, चरन आयो शरण जी ।
यो विरद आप निहार स्वामी, मेट जामन मरण जी ॥
तुम ना पिछान्या आन मान्या, देव विविध प्रकार जी ।
या बुद्धिसेती निज न जान्यो, भ्रम गिन्यो हितकार जी ॥१॥

भव विकट वन में करम वैरी, ज्ञान धन मेरो हरयो ।
तब इष्ट भूल्यो भ्रष्ट होय, अनिष्ट गति धरतो फिरयो ॥
धन घड़ी यो धन दिवस यों ही, धन जनम मेरो भयो ।
अब भाग्य मेरो उदय आयो, दरश प्रभु जी को लख लयो ॥२॥

छवि वीतरागी नगन मुद्रा, दृष्टि नासा पै धरैं ।
वसु प्रातिहार्य अनंत गुणयुत, कोटि रवि छवि को हरैं ॥
मिट गयो तिमिर मिथ्यात्व मेरा, उदय रवि आतम भयो ।
मो उर हरष ऐसो भयो, मनु रंक चिंतामणि लयो ॥३॥

मैं हाथ जोड़ नवाय मस्तक, वीनऊँ तव चरण जी।
सर्वोत्कृष्ट त्रिलोकपति जिन, सुनो तारण तरण जी॥
जाचूं नहीं सुरवास पुनि, नरराज परिजन साथ जी।
'बुध' जाचहूँ तुव भक्ति भव भव, दीजिये शिव नाथ जी।४॥

卐

— विनती —

अहो जगत गुरु देव

अहो जगतगुरु एक, सुनियो अरज हमारी।
तुम हो दीन दयाल, मैं दुखिया संसारी॥१॥

इस भव वन में वादि काल अनादि गमायो।
भ्रम्यो चतुर्गति माहिं, सुख नहिं दुख बहु पायो॥२॥

कर्म महा रिपु जोर, एक न कान करें जी।
मनमाने दुख देहिं, काहू सों नाहिं डरें जी॥३॥

कबहूँ इतर निगोद, कबहूँ नरक दिखावे।
सुर नर पशुगति माहिं, बहुविध नाच नचावे॥४॥

प्रभु इनको परसंग, भव भव माहिं बुरो जी।
जे दुख देखे देव, तुम सों नाहिं दुरो जी॥५॥

एक जनम की बात, कहि न सकौं सुन स्वामी।
तुम अनंत परजाय, जानत अंतरजामी॥६॥

मैं तो एक अनाथ, ये मिल दुष्ट घनेरे।
कियो बहुत बेहाल, सुनियो साहिब मेरे॥७॥

ज्ञान महानिधि लूटि, रंक निबल कर डार्यो।
इनहीं तुम मुझ माहिं, हे जिन अन्तर पार्यो॥८॥

卐

❀ सरस्वती–स्तवन ❀

देवी सरस्वती तू, जिन देव की दुलारी ।
स्याद्वाद नाम तेरा ऋषियों को प्राण–प्यारी ॥
तेरे चरण कमल का, जो ध्यान योगी धरते ।
वे अघ समूह हर कर, निज ज्ञानवृद्धि करते ॥
जो जो शरण में तेरी, हे मात जीव आये ।
सद्ज्ञान देके तूने, शिव मार्ग पर लगाये ॥
सुर नर मुनींद्र सब ही, तेरी सुकीर्ति गावें ।
तुव भक्ति में मगन हो, तौ भी न पार पावें ॥
इस गाढ़ मोह तममें, हमको नहीं दिखाता ।
अपना सुरूप भी तो, नहिं मात याद आता ॥
ये कर्म–शत्रु जननी, हमें ये सदा सताते ।
गति चार माहिं हमको, नित दुःख दे रुलाते ॥

卐

— सायंकाल की स्तुति —

हे सर्वज्ञ ! ज्योतिमय गुणमणि बालक-जन पर करहु दया ।
कुमति निशा अंधयारी कारी सत्य ज्ञानरवि छिपा दिया ॥१॥

क्रोध मान अरु माया तृष्णा यह बटमार फिरैं चहुँ ओर ।
लूट रहे जग जीवन को यह देख अविद्या तम का जोर ॥२॥

मारग हमको सूझे नांही ज्ञान विना सब अंध भये ।
घट में आय विराजो स्वामी बालक जन सब खड़े नये ॥३॥

सतपथ दर्शक जनमन-हर्षक घट घट अंतरयामी हो ।
श्री जिनधर्म हमारा प्यारा इसके तुम ही स्वामी हो ॥४॥

नीति मार्ग पर नित्य चलें हम, योग्याहार विहार करें ।
पालें योग्याचार सदा हम, वर्णाचार विचार करें ।५॥
धर्ममार्ग अरु वैद्य मार्ग से, देशोद्धार विचार करें ।
आर्ष वचन हम दृढ़तम पालें, सद्सिद्धांत प्रचार करें ॥६॥
श्री जिनधर्म बढ़े दिन दूनौ, पंच आप्त स्तुति नित्य करें ।
सत्संगति को पाकर स्वामिन, कर्म कलंक समूल हरें ॥७॥
फलें भाव ये सभी हमारे, यही निवेदन करते हैं ।
'लाल' बाल मिल भाल वीर के, चरणों में नित धरते हैं ॥८॥

卐

गुरु-प्रार्थना

गुरु तारण—स्वामी मेरे !

पतितोद्धारक अधम उधारक, करुणा-सिन्धु घनेरे ॥ गुरु०

महा मुनीश्वर परम तपोधन, गेह ज्ञान-गुण केरे ।
सन्तों के कंचन-गृह पर जो, बन मणि-कलश चढ़े रे ॥

डूब रहे मिथ्यात्व-सिंधु में, थे हम साँझ-सवेरे ।
प्यारे गुरु ने ज्ञान-पोत से, हमको पार करे रे ॥

जाति पांति का भेद न रखकर, सबको चित्त धरे रे ।
मुक्ति-नगर में ले जाने को, सबके बाहु गहे रे ॥

'सोऽहं' 'अहम्' और 'मम्' ध्वनि से त्रिभुवन चेत करे रे ।
चौदह ग्रन्थ रत्न दे हमको, भव-भव ताप हरे रे ॥

गुरु दयाल तेरे पद-पंकज, मेरे हृदय गड़े रे ।
तू चन्दा "चंचल" चकोर हम, तू साहब हम चेरे ॥

जगती में हम सबके सिर पर, नृत्य कर रहा काल।
क्या जानें कब किसके ऊपर, टूटे उसकी ताल॥
पमेश्वर और कालबली का, जिसके मन न खयाल।
वह गाफिल चहुँगति में फिर फिर, पाता दुख विकराल॥
परम उदार तरनतारन जिन, अशरण शरण भुआल।
'चंचल" ऐसे गुरु-पद पाकर, सब भव हुआ निहाल॥

卐

आतम-ध्वनि

अलख्, अगोचर, अगम्, अरूप,
जय सत्, चित्, आनन्द स्वरूप।
जय जय परम ब्रह्म, चिद्रूप,
अजर, अमर त्रिभुवन-पति-भूप॥

卐

प्रार्थना-आतमराम

आतमराम जय आतमराम, अजर अमर है आतमराम।
पतित पावन आतमराम॥
बोलो बन्धुओ बड़े प्रेम से, आतमराम जय आतमराम। टेक॥

है यह एक अनेकों नाम, मन मन्दिर मे है विश्राम।
सोऽहं शिवं ब्रह्म है नाम, इसको कहते प्रेमाभिराम॥
नाम रूप का भेद भूल जा सदा सर्वदा आतमराम।
निर्मल शुद्ध बुद्धि से देखो, पा जावोगे आतमराम॥1॥
तीरथमय हैं चारों धाम, इसमें गुंजित आठो याम।
ब्रह्म विष्णु हैं शंकर नाम, कोई कहता राधेश्याम॥

तारनतरन गुरु ने जहां पर, अंत समय कीना विश्राम ।
ऐसे आतमतत्व के ज्ञाता, गुरु को नितप्रति सदा प्रणाम ॥८॥

卐

❀ तारण झण्डावन्दन ❀

तारण तरण गुरू का प्यारा, झण्डा ऊंचा रहे हमारा ॥
जिन शासन का यही सहारा, ॐ पद चिन्ह विभूषित प्यारा ।
केशरिया रंगीन हमारा, झण्डा ऊँचा रहे हमारा ॥१॥ टेक

इसे देख हो पुलकित मन में, रोम रोम रोमांचित तन में ।
विजय गीत संगीत वचन में, गावे तारण वीर हमारा ॥२॥

झण्डा लहर लहर लहरावे, जग में यह घर घर फहरावे ।
वसुधा का दुख दूर भगावे, जिनशासन का बजे नगारा ॥३॥

वीरों को हरषाने वाला, प्रेम सुधा बरसाने वाला ।
वीर धर्म सरसाने वाला, यह गौरव अभिमान हमारा ॥४॥

भू-मण्डल तारण गुण गावे, इस झण्डे के नीचे आवे ।
यह रग रग में जोश बढ़ावे, बढ़ो बढ़ो मैदान हमारा ॥५॥

इस झण्डे को जो फहराता, वह मनवांछित पदवी पाता ।
भू-मण्डल उसका गुण गाता, फहरा कर देखो इक बार ॥६॥
तीर्थंकर की यही पताका, समवशरण में यह लहराता ।
इसका विजय गान वह गाता, सुरपति भी कर नृत्य अपारा ॥७॥
इसकी एक-एक लहर में, टपक रहा रस वीर कहर में ।
दृढ़ रखना तुम अपने कर में, तारण वीर वीर मतवारा ॥८॥
वीर रणांगण में अब आओ, इस झण्डे को लेकर जाओ ।
सौ सौ बार विजय कर लाओ, लो यह शुभ आशीष हमारा ॥९॥

मै भ्रम्यो अपनपो विसरि आप, अपनाये विधिफल पुण्य-पाप ।
निजको परको करता पिछान, पर में अनिष्टता इष्ट ठान ॥८॥

आकुलित भयो अज्ञान धारि, ज्यों मृग मृगतृष्णा जानि वारि ।
तन परिणति में आपो चितारि, कबहू न अनुभवो स्वपदसार ॥९॥

तुमको बिन जाने जो कलेश, पाये सो तुम जानत जिनेश ।
पशु नारक नर सुरगति मंझार, भव धरि धरि मरयो अनन्तबार ॥१०॥

अब काललब्धि बलतें दयाल, तुम दर्शन पाय भयो खुशाल ।
मन शान्त भयो मिट सकल द्वंद, चाख्यो स्वातमरस दुखनिकन्द ॥११॥

तातें अब ऐसी करहु नाथ, बिछुरै न कभी तुव चरण साथ ।
तुम गुणगण को नहिं छेव देव, जग तारण को तुम विरद एव ॥१२॥

आतम के अहित विषय कषाय, इनमें मेरी परिणति न जाय ।
मैं रहूं आपमें आप लीन, सो करो होहुं ज्यों निजाधीन ॥१३॥

मेरे न चाह कुछ और ईश, रत्नत्रयनिधि दीजे मुनीश ।
मुझ कारज के कारण सु आप, शिव करहु हरहु मम मोहताप ॥१४॥

शशि शांतकरन तप हरन हेत, स्वयमेव तथा तुम कुशल देत ।
पीवत पियूष ज्यों रोग जाय, त्यो तुम अनुभवतैं भव नसाय ॥१५॥

त्रिभुवन तिहुँ काल मंझार कोय, नहिं तुम बिन निज सुखदाय होय ।
मो उर यह निश्चय भयो आज, दुख जलधि उतारन तुम जिहाज ॥१६॥

—: दोहा :—

तुम गुणगण मणि गणपती, गणत न पावहिं पार ।
दौल स्वल्पमति किम कहैं, नमहुँ त्रियोग संभार ॥

卐

अब होऊं भव भव स्वामी मेरे, मैं सदा सेवक रहों ।
कर जोर यों वरदान मांगो मोक्षफल जावत लहों ॥१२॥
जो एक मांही एक राजै, एक मांहि अनेकनो ।
इक अनेक की नहीं संख्या नमों सिद्ध निरंजनो ॥१३॥

(चौपाई)

मैं तुम चरण कमल गुण गाय, बहु विधि भक्ति करी मन लाय ।
जनम जनम प्रभु पाऊं तोहि, यह सेवाफल दीजे मोहि ॥१४॥
कृपा तिहारी ऐसी होय, जनम मरन मिटावो मोय ।
बार बार मैं विनती करूं, तुम सेये भवसागर तरूं ॥१५॥
नाम लेत सब दुख मिट जांय, तुम दर्शन देखो प्रभु आय ।
तुम हो प्रभु देवन के देव, मैं तो करूं चरण तव सेव ॥१६॥
मैं आयो पूजन के काज, मेरो जनम सफल भयो आज ।
पूजा करके नवाऊँ शीश, मुझ अपराध क्षमहु जगदीश ॥१७॥

卐

(पं० बुधजनकृत)

स्तुति

प्रभु पतित पावन मैं अपावन चरन आयो शरनजी ।
यो विरद आप निहार स्वामी मेट जामन मरनजी ॥
तुम ना पिछान्या आन मान्या देव विविध प्रकारजी ।
या बुद्धिसेती निज न जान्या भ्रम गिण्या हितकारजी ॥१॥
भव विकट वनमें करम वैरी ज्ञानधन मेरो हरयो ।
तब इष्ट भूलयो भ्रष्ट होय अनिष्ट गति धरतो फिरयो ॥
धन घड़ी यो धन दिवस यो ही धन जनम मेरो भयो ।
अब भाग्य मेरो उदय आयो दरश प्रभु को लख लयो ॥२॥

अब मो पर क्यों न कृपा करो यह क्या अन्धेर जमाना है।
इन्साफ करो मत देर करो सुखवृन्द भरो भगवाना है॥३॥

दुख कर्म मुझे हैरान किया अब तुम सों आनि पुकारा है।
समरथ सभी विधि सों तुम हो तुम ही लग दौर हमारा है॥
खल घायल पालक बालक का नृपनीति यही जगसारा है।
तुम नीतिनिपुण त्रैलोकपती तुमरो शरणागत भारा है॥४॥

जब से तुम से पहिचान भई तब से तुम ही को जाना है।
तुम्हरे ही शासन का स्वामी हमको शरणा सरधाना है॥
जिनको तुम्हरो शरणागत है तुमको यमराज डराना है।
यह सुयश तुम्हारे सांचे का यश गावत वेद पुराना है॥५॥

जिसने तुमसे दिल दर्द कहा तिस का दुख तुमने हाना है।
अघ छोटा मोटा नाश तुरत सुख दिया तिन्हें मनमाना है॥
पावक से शीतल नीर किया अरु चीर किया असमाना है।
भोजन था जिसके पास नहीं सो किया कुबेर समाना है॥६॥

चिंतामणि पारस कल्पतरू सुखदायक यह परधाना है।
तुम दासन के सब दास यही हमरे मनमें ठहराना है॥
तुम भक्तन को सुर इन्द्रपती फिर चक्रवर्ति पद पाना है।
क्या बात कहों विस्तार बड़े वे पावें मुक्ति ठिकाना है॥७॥

गति चार चौरासी लाख विषें चिन्मूरति मेरा भटका है।
हो दीनबन्धु करुणानिधान अबलो न मिटा वह खटका है॥
जब योग मिलो शिव साधन को तब विघन कर्म ने हटका है।
अब विघन हमारा दूर करो सुख देहु निराकुल घटका है॥८॥

संकट हरण विनती

हो दीनबन्धु श्रीपति करुणानिधान जी।
अब मेरी व्यथा क्यों न हरो बार क्या लगी। टेक॥

मालिक हो दो जहान के जिनराज आप ही।
ऐबो हुनर हमारा कुछ तुम से छिपा नहीं॥
बेजान मे गुनाह जो मुझसे बन गया सही।
ककरी के चोर को कटार मारिये नहीं॥१॥ हो दीन०॥

दुख दर्द दिल का आपसे जिसने कहा सही।
मुशकिल कहर बहर से लई है भुजा गही॥
सब वेद और पुराण में परमाण है यही।
आनन्द कंद श्रीजिनंद देव है तुही॥२॥

हाथी पैं चढ़ी जाती थी सुलोचना सती।
गङ्गा में ग्राह ने गही गजराज की गती॥
उस वक्त में पुकार किया था तुम्हें सती।
भय टार के उभार लिया हो कृपापती।३॥

पावक प्रचण्ड कुण्ड में उमण्ड जब रहा।
सीता से सत्य लेने को जब राम ने कहा॥
तुम ध्यान धरके जानकी पग धारती तहां।
तत्काल ही सर स्वच्छ हुआ कमल लहलहा।४।

जब चीर द्रौपदी का दुःशासन ने था गहा।
सबरे सभा के लोग कहते थे हा हा हा हा॥
उस वक्त भीर पीर में तुमने किया सहा।
परदा ढका सती का सुयश जगत में रहा॥५॥

तत्काल हो सुन्दर किया श्रीपालराज को ।
वह राज भोग भोग भया मुनिराज हो ॥११॥

जब सेठ सुदर्शन को सूली दण्ड लगाया ।
रानी के कहे भूप ने शूली पै चढ़ाया ॥
उस वक्त सेठ ने तुम्हें निज ध्यान में ध्याया ।
शूली से उतार उसको सिंहासन पै बिठाया ॥१२॥

जब सेठ सुधन्ना जी को वापी में गिराया ।
ऊपर से दुष्ट था उसे वह मारने आया ॥
उस वक्त तुम्हें सेठ ने दिल अपने में ध्याया ।
तत्काल ही जञ्जाल से तब उसको बचाया ॥१३॥

एक सेठ के घर में किया दारिद्र ने डेरा ।
भोजन का ठिकाना था नहीं सांझ सवेरा ॥
उस वक्त तुम्हें सेठ ने जब ध्यान में घेरा ।
घर उसके था तब कर दिया लक्ष्मी का बसेरा ॥१४॥

बलि वाद में मुनिराज सों जब पार न पाया ।
तब रातको तलवार ले शठ मारने आया ॥
मुनिराज ने निज ध्यान में मन लीन लगाया ।
उस वक्त हो परतक्ष तहां देव बचाया ॥१५॥

जब रामने हनुमन्त को गढ़लंक पठाया ।
सीता की खबर लेने को बिलफौर सिधाया ॥
मग बीच दो मुनिराज की लख आग में काया ।
झट वार मूसलधार से उपसर्ग बुझाया ॥१६॥

तुम दोनों को अभिराम स्वर्गधाम लगाया ।
हम आपसे दातार को लख आज हो पाया ॥२२॥

कपि स्वान सिंह नवल अज बैल बिदारे ।
तिर्यञ्च जिन्हें रञ्च न था बोध नितारे ॥
इत्यादि को सुरधाम दे शिवधाम में धारे ।
हम आपसे दातार को प्रभु आज निहारे ॥२३॥

तुमही अनंत जन्तु का भय भीर निवारा ।
वेदो पुराण में गुरु गणधर ने उचारा ॥
हम आपकी शरणागति में आके पुकारा ।
तुम हो प्रत्यक्ष कल्पवृक्ष इक्षु अहारा ॥२४॥

प्रभु भक्त व्यक्त जुक्त मुक्त मुक्त के दानी ।
आनन्दकन्द वृन्द को हो मुक्ति के दानी ॥
मोहि दीन जान दीनबन्धु पातक भानी ।
संसार विषय तार तार अन्तरयामी ॥२५॥

करुणानिधान बान को अब क्यों न निहारो ।
दानी अनन्त दान के दाता हो सम्भारो ॥
वृष चन्द नन्द वृन्द का उपसर्ग निवारो ।
संसार विषम क्षार से प्रभु पार उतारो ॥
हो दीनबन्धु श्रीपति करुणा निधान जी ।
अब मेरी व्यथा क्यों न हरो बार क्या लगी ॥२६॥

卐

लोक माहि तेरो कछु नाहि, लोक आन तुम आन लखाहि ।
वह सब षट् द्रव्यन का धाम, तू चिन्मूरति आतमराम ॥११॥

दुर्लभ परद्रव्यन को भाव, सो तो दुर्लभ है सुन राव ।
जो तेरे है ज्ञान अनन्त, सो नहिं दुर्लभ सुनो महन्त ॥१२॥

धर्म स्वभाव आपही जान, आप स्वभाव धर्म सोई मान ।
जब वह धर्म प्रगट तोहि होय, तब परमातम पद लख सोय ॥१३॥

ये ही बारह भावन सार, तीर्थंकर भावें निर्धार ।
होय विराग महाव्रत लेय, तब भव भ्रमण जलांजलि देय ॥१४॥

भैया भावो भाव अनूप, भावत होय तुरत शिव भूप ।
सुख अनन्त विलसो निशि दीश, इम भावो स्वामी जगदीश ।१५॥

—: दोहा :—

प्रथम अशरण है जगत्, कहे अन्य अशुचान ।
आस्रव संवर निर्जरा, लोक बोध तुम भान ॥१६॥

इति बारह भावना भैया भगवतीदास कृत सम्पूर्ण ।

卐

बारह भावना

(पं० भूधरदास जी कृत)

दोहा—

राजा राणा छत्रपति, हथियन के असवार ।
मरना सबको एक दिन, अपनी अपनी बार ॥१॥

दल बल देवी देवता, मात पिता परिवार ।
मरती बिरियां जीव को, कोई न राखनहार ॥२॥

धन जन कंचन राज सुख, सबै सुलभ कर जान ।
दुर्लभ है संसार में, एक जथारथ ज्ञान ।२३॥

५

बारह भावना

(पं० [illegible] जी कृत)

(गीता छन्द)

जेती जगत में वस्तु तेती अथिर पर्यय ते सदा ।
परिणमन राखन नाहिं समरथ इन्द्र चक्री मुनि कदा ॥
तन धन यौवन सुत नारि परिकर जान दामिन दमक सा ।
ममता न कीजे धारि समता मानि जल में नमक सा ॥१॥

चेतन अचेतन परिग्रह सब होय अपनी तिथि लहैं ।
सो रहैं आप करार माफिक अधिक राखे न रहैं ॥
अब शरण काकी लेयगा जब इन्द्र नाहीं रहत हैं ।
शरण तो इक धर्म आतम जाहि मुनिजन गहत हैं ॥२॥

सुर नर नरक पशु सकल हेरे कर्म चेरे बन रहे ।
सुख शाश्वता नहीं भासता सब विपति में अति सन रहे ॥
दुख मानसी तो देवगति में नारकी दुख ही भरे ।
तिर्यंच मनुज वियोग रोगी शोक संकट में जरे ॥

क्यों भूलता शठ फूलता है देख पर कर थोक को ।
लाया कहां ले जायगा क्या फौज भूषण रोक को ।
जन्मन मरण तुझ एकले को काल केता होहगा
संग अरु नाहीं लगे तेरे सीख मेरी सुन भगा

जिन देव भाषा तिन प्रकाशा भर्म नाशा सुन गिरा ।
सुर मनुष तिर्यंच नारकी हैं ऊर्ध मध्य अधो धरा ॥१०॥

अनन्त काल निगोद अटक्यो निकस थावर तन धरा ।
भू वारि तेज बयार ह्वै कै बेइन्द्रिय त्रस अवतरा ॥
फिर हो तेइन्द्री वा चौइन्द्री पंचेन्द्री मन बिन बना ।
मन युत मनुष गति होना दुर्लभ ज्ञान अति दुर्लभ घना ॥११॥

न्हाना धोना तीर्थ जाना धर्म नाहीं जप जपा ।
नग्न रहना धर्म नाहीं धर्म नाहीं तप तपा ॥
वर धर्म निज आतम स्वभावा ताहि बिन सब निष्फला ।
'बुध जन' धर्म निज धार लीना तिनहि कीना सब भला ॥१२॥

दोहा—

अथिर शरण संसार है, एकत्व अनित्यहि जान ।
अशुचि आस्रव संवरा, निर्जर लोक बखान ॥१३॥

बोध औ दुर्लभ धर्म ये, बारह भावन जान ।
इनको ध्यावे जो सदा, क्यों न लहे निर्वाण ॥१४॥

卐

बारह भावना

(पं० मंगतराय जी कृत)

वन्दूं श्री अरहंत पद वीतराग विज्ञान ।
वरणूं बारह भावना जग जीवन हित जान ॥१॥

(१)

कहां गये चक्री जिन जीता भरतखण्ड सारा ।
कहां गये वह रामरु लक्ष्मण जिन रावन मारा ॥

(३)

जन्म मरणरूप जरा रोग से सदा दुखी रहता ।
द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव भव परिवर्तन सहता ॥
छेदन भेदन नरक पशु गति वध बंधन सहना ।
राग उदय से दुःख सुरगति में कहां सुखी रहना ॥८॥

भोगि पुण्यफल हो एकेंद्री क्या इसमें लाली ।
कुतवाली दिन चार वही फिर खुरपा अरु जाली ॥
मानुष योनि अनेक विपतिमय कहीं न सुख देखा ।
पंचम गति सुख मिले शुभाशुभ का मेटो लेखा ॥९॥

(४)

जन्मे मरे अकेला चेतन सुख दुख का भोगी ।
और किसी का क्या इक दिन काय जुदी होगी ॥
कमला चलत न पेंड जाय मरघट तक परिवारा ।
अपने अपने सुख को रोवे पिता पुत्र दारा ॥१०॥

ज्यों मेले में पंथी जन मिल नेह फिरैं धरते ।
ज्यों तरुवर पै रैन बसेरा पंछी आ करते ॥
कोस कोई दो कोस कोई उड फिर थक थक हारे ।
जाय अकेला हंस संग में कोई न पर मारे ॥११॥

(५)

मोहरूप मृग तृष्णा जगमें मिथ्या जल चमकै ।
मृग चेतन नित भ्रम में उठ उठ दौड़े थक थक के ॥
जल नहिं पावे प्राण गँवावे भटक भटक मरता ।
वस्तु पराई माने अपनी भेद नहीं करता ॥१२॥

(८)

ज्यों मोरी में डाट लगावे तब जल रुक जाता ।
त्यों आस्रव को रोके संवर, क्यों नहि मन लाता ।
पंच महाव्रत समिति गुप्ति कर वचन काय मन को,
दश विधि धर्म परीषह बाइस बारह भावन को ॥१८॥
यह सब भाव सतावन मिलकर आस्रव को खोते,
सुपन दशा से जागो चेतन कहाँ पड़े सोते ।
भाव शुभाशुभ रहित शुद्ध भावन संवर पावे,
डाँट लगत यह नाव पड़ी मझधार पार जावे ॥१९॥

(९)

ज्यों सरवर जल रुका सूखता तपन पड़े भारी,
संवर रोके कर्म निर्जरा है सोखनहारी ।
उदय भोग सविपाक समय पक जाय आम डाली,
दूजी है अविपाक पकावे पाल विषैं माली ॥२०॥
पहली सबको होय नहीं कुछ सरै काम तेरा,
दूजी करै जु उद्यम करके मिटे जगत फेरा ।
संवर सहित करो तप प्राणो मिले मुक्ति रानी,
इस दुलहिन की यही सहेली जाने सब ज्ञानी ॥२१॥

(१०)

लोक अलोक आकाश मांहि थिर निराधार जानो,
पुरुषरूप कर कटी भये षट् द्रव्यन सों मानो ।
इस का कोई न करता हरता अमिट अनादी है,
जीवरु पुद्गल नाचे यामें कर्म उपाधी है ॥२२॥
पाप पुण्य सों जीव जगत में नित सुख दुख भरता,
अपनी अपनी आप भरैं शिर औरन के धरता ।

मोह ममता त्याग दूं सब कुटुम्ब परिवार से ।
तोड़ दूं झूठी लगन धन धाम एक घर बार से ॥
मोह तज दूं महलो–मंदिर और चमन गुलजार से ।
वन में जा डेरा करूं मुंह मोड़ इस संसार से ॥१॥

इस जगत में जो पदारथ आ रहे मुझको नजर ।
थिर नहीं है एक उनमें, हैं ये सब के सब अथिर ॥
जिन्दगी का क्या भरोसा, यह रही हरदम गुजर ।
दम है जब तक दम में दम है दम में दम से बेखबर ॥२॥

कौनसी वह चीज है जिस पर लगाऊँ दिल यहां ।
आज जीवन बन रहा, जो कल भला वह फिर कहां ?
माल ओ धन की हकीकत है जमाने पर अयाँ ।
क्या भरोसा लक्ष्मी का अब यहां और कल वहां ॥३॥

बाप मां अरु बहन भाई, बेटा बेटी नार क्या ।
सब सगे अपनी गरज के यार क्या परिवार क्या ॥
बात मतलब से करे सब जगत क्या संसार क्या ।
बिन गरज पूछे न कोई बात क्या तकरार क्या ॥४॥

था अकेला, हूँ अकेला, अरु अकेला ही रहूँ ।
जो पड़ें दुख में सहे अरु जो पड़े सो मैं सहूँ ॥
कौन है अपना सहायक कौन का शरणा गहूँ ।
फिर भला किसको जगत में अपना हमराही कहूँ ॥५॥

ज्ञानरूपी जल से अग्नि क्रोध की शीतल करूं ।
मान माया लोभ राग अरु द्वेष आदिक परिहरूं ॥
वश में विषयों को करूं अरु सब कषायों को हरूं ।
शुद्ध चित आनन्द में मैं ध्यान आतम का धरूं ॥६॥

जगके सब जीवों से अपना प्रेम हो अरु प्यार हो ।
और मेरी इस देह से संसार का उपकार हो ॥
ज्ञान का प्रचार हो अरु देश का उद्धार हो ।
प्रेम और आन्द का व्यवहार घर घर द्वार हो ॥७॥

काल सर पर काल का खज्जर लिए तैयार है ।
कौन बच सकता है इससे इसका गहरा वार है ॥
हाय जब हर हर कदम पर इस तरह से हार है ।
फिर न क्यों वह राह पकड़ूं सुख का जो भंडार है ॥८॥

प्रेमका मन्दिर बनाकर ज्ञानदेव को दूं बिठा ।
और आनन्द शाँतिके घडियाल घण्टे दूं बजा ॥
और पुजारी बनके दूं मैं सबको आतम-रस चखा ।
यह करूं उपदेश जगमें, कर भला होगा भला ॥९॥

आये वह कब शुभ घड़ी जब बन विचरता मैं फिरूं ।
शाँति से तब शांति गङ्गा का मैं निर्मल जल पिऊं ॥
'ज्योति' से गुणगान की अज्ञान सब जग का दहूं ।
होय सब जग का भला यह बात मैं हरदम चहूँ ॥१०॥

卐

वैराग्य-भावना

(श्री वज्रनाभि चक्री कृत)

(दोहा)

बीज राख फल भोगवे, ज्यों किसान जग माहिं ।
त्यों चक्री सुख हैं मगन, धर्म विसारे नाहिं ॥

(जोगीरासा वा नरेन्द्र छन्द)

इस विधि राज करै नरनायक भोगै पुण्य विशाला ।
सुखसागर में मग्न निरन्तर जात न जाने काला ॥
एक दिवस शुभकर्म-संयोगे क्षेमंकर मुनि वंदे ।
देखे श्रीगुरु के पद-पंकज लोचन-अलि आनन्दे ॥१॥

तीन प्रदक्षिण दे शिर नायो कर पूजा स्तुति कीनी ।
साधु समीप विनय कर बैठो चरणों में दिठि दीनी ॥
गुरु उपदेशो धर्म शिरोमणि सुन राजा वैरागो ।
राज्य रमा वनितादिक जो रस सो सब नीरस लागो ॥२॥

मुनि सूरज कथनी किरणावलि लगत भर्म बुद्धि भागी ।
भव तन भोग स्वरूप विचारो परम धर्म अनुरागी ॥
या संसार महावन भीतर भ्रमते छोर न आवे ।
जन्मन मरन जरा यों दाहे जीव महा दुख पावे ॥३॥

कबहूँ कि जाय नरकपद भुंजे छेदन भेदन भारी ।
कबहू कि पशु पर्याय धरे तहां वध बन्धन भयकारी ॥
सुरगति में पर-सम्पति देखे राग उदय दुख होई ।
मानुष योनि अनेक विपतिमय सर्व सुखी नहीं कोई ॥४॥

कोई इष्ट वियोगी विलखे कोइ अनिष्ट संयोगी ।
कोई दीन दरिद्री दीखे कोई तनका रोगी ॥
किस ही घर कलिहारी नारी कै वैरी सम भाई ।
किस ही के दुख बाहर दीखें किसही उर दुचिताई ॥५॥

कोई पुत्र बिना नित झूरै होय मरै तब रोवै ।
खोटी सन्तति से दुख उपजे क्यों प्राणी सुख सोवै ॥

पुण्य उदय जिनके तिन के भी नाहिं सदा सुख साता ।
यह जगवास यथारथ दीखे सबही हैं दुख-दाता ॥६॥

जो संसार विषै सुख होतो तीर्थंकर क्यों त्यागे ।
काहे को शिव साधन करते संयम से अनुरागे ॥
देह अपावन अथिर घिनावनि इसमें सार न कोई ।
सागर के जल से शुचि कीजै तो भी शुद्ध न होई ॥७॥

सप्त कुधातु भरी मलमूत्ररु चर्म लपेटी सोहै ।
अन्तर देखत या सम जगमें और अपावन को है ।
नव मल द्वार स्रवैं निश वासर नाम लिये घिन आवे ।
व्याधि उपाधि अनेक जहां तहां कौन सुध सुखी पावे ॥८॥

पोषत तो दुख दोष करे अति सोपत सुख उपजावे ।
दुर्जन देह स्वभाव बराबर मूरख प्रीति बढ़ावे ॥
राचन योग्य स्वरूप न याको विरचन योग्य सही है ।
यह तन पाय महातप कीजै इसमें सार यही है ॥९॥

भोग बुरे भवरोग बढ़ावें वैरी हैं जग जीके ।
बेरस होंय विपाक समय अति सेवत लागें नीके ॥
वज्र अग्नि विष से विषधर से हैं अधिके दुखदाई ।
धर्मरत्न के चोर प्रबल अति दुर्गति पन्थ सहाई ॥१०॥

मोह उदय यह जीव अज्ञानी भोग भले कर जाने ।
ज्यों कोई जन खाय धतूरा सो सब कञ्चन माने ॥
ज्यों ज्यों भोग संयोग मनोहर मनवांछित जन पावे ।
तृष्णा नागिन त्यों त्यों डंके लहर लोभ विष लावे ॥११॥

मैं चक्री पद पाय निरन्तर भोगे भोग घनेरे ।
तो भी तनिक भये नहिं पूरण भोग मनोरथ मेरे ॥

राज समाज महा अघ-कारण बैर बढ़ावनहारा ।
वेश्या सम लक्ष्मी अति चंचल याका कौन पत्यारा ॥१२॥
मोह महा रिपु वैर विचारे जग जीव संकट डारे ।
घर कारागृह वनिता बेड़ी परिजन हैं रखवारे ॥
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण तप ये जिय को हितकारी ।
येही सार असार और सब यह चक्री चित धारी ॥१३॥

छोड़े चौदह रत्न नवों निधि और छोड़े संग साथी ।
कोटि अठारह घोड़े छोड़े चौरासी लख हाथी ॥
इत्यादिक सम्पति बहुतेरी जीरण तृणवत त्यागी ।
नीति विचार नियोगी सुत को राज्य दियो बड़भागी ॥१४॥

होय निसल्य अनेक नृपति संग भूषण वसन उतारे ।
श्री गुरुचरण धरी जिनमुद्रा पंच महाव्रत धारे ॥
धन यह समझ सुबुद्धि जगोत्तम धन यह धीरज धारी ।
ऐसी सम्पति छाड़ बसे वन, तिन पद धोक हमारी ॥१५॥

दोहा

परिग्रह पोट उतार सब, लीनों चारित्र पंथ ।
निज स्वभाव में थिर भये, वज्रनाभि निर्ग्रंथ ॥

卐

मेरी भावना

(स्व० पं० जुगलकिशोर जी कृत)

जिसने रागद्वेष कामादिक जीते, सब जग जान लिया ।
सब जीवों को मोक्ष-मार्ग का, निस्पृह हो उपदेश दिया ॥
बुद्ध, वीर, जिन, हरि, हर, ब्रह्मा, या उसको स्वाधीन कहो ।
भक्तिभाव से प्रेरित हो यह, चित्त उसी में लीन रहो ॥१॥

विषयों की आशा नहिं जिनके, साम्यभाव-धन रखते हैं।
निज पर के हित साधन में जो, निश-दिन तत्पर रहते हैं॥
स्वार्थ-त्यागकी कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते हैं।
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के, दुख-समूह को हरते हैं॥२॥

रहे सदा सत्संग उन्हीं का, ध्यान उन्हीं का नित्य रहे।
उन ही जैसी चर्या में यह, चित्त सदा अनुरक्त रहे॥
नहीं सताऊं किसी जीव को, झूठ कभी नहिं कहा करूं।
पर-धन-वनिता पर न लुभाऊं, संतोषामृत पिया करूं॥३॥

अहंकार का भाव न रक्खूं, नहीं किसी पर क्रोध करूं।
देख दूसरों की बढ़ती को, कभी न ईर्ष्याभाव धरूं॥
रहे भावना ऐसी मेरी सरल सत्य व्यवहार करूं।
बने जहां तक इस जीवन में, औरों का उपकार करूं॥४॥

मैत्री-भाव जगत में मेरा, सब जीवों से नित्य रहे।
दीन-दुखी जीवों पर मेरे, उरसे करुणा—स्रोत बहे॥
दुर्जन, क्रूर कुमार्गरतो पर, क्षोभ नहीं मुझ को आवे।
साम्यभाव रक्खूं मैं उन पर, ऐसी परिणति हो जावे॥५॥

गुणी जनों को देख हृदय में, मेरे प्रेम उमड़ आवे।
बने जहां तक उनकी सेवा, करके यह मन सुख पावे॥
होऊं नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे।
गुण-ग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषों पर जावे॥६॥

कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे।
लाखों वर्षों तक जीऊं या, मृत्यु आज ही आजावे॥
अथवा कोई कैसा ही भय, या लालच देने आवे।
तो भी न्यायमार्ग से मेरा, कभी न पद डिगने पावे।७।

होकर सुख में मग्न न फूले, दुख में कभी न घबरावे ।
पर्वत, नदी, श्मशान भयानक, अटवी से नहिं भय खावे ॥
रहे अडोल-अकम्प निरन्तर, यह मन दृढ़तर बन जावे ।
इष्ट वियोग-अनिष्ट योग में, सहनशीलता दिखलावे ॥८॥

सुखी रहें सब जीव जगत के, कोई कभी न घबरावें ।
वैर, पाप, अभिमान छोड़ जग, नित्य नये मंगल गावें ॥
घर-घर चर्चा रहे धर्म की, दुष्कृत दुष्कर हो जावें ।
ज्ञान-चरित उन्नत कर अपना, मनुज-जन्म फल सब पावें॥९॥

ईति-भीति व्यापे नहिं जग में, वृष्टि समय पर हुआ करे ।
धर्मनिष्ठ होकर राजा भी, न्याय प्रजा का किया करे ॥
रोग-मरी-दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शान्ति से जिया करे ।
परम अहिंसा धर्म जगत में, फैल सर्वहित किया करे ॥१०॥

फैले प्रेम परस्पर जग में, मोह दूर पर रहा करे ।
अप्रिय-कटुक-कठोर शब्द नहिं, कोई मुख से कहा करे ॥
बन कर सब 'युग-वीर' हृदय से, देशोन्नति-रत रहा करें ।
वस्तुस्वरूप विचार खुशी से, सब दुख संकट सहा करें ॥११॥

卐

मेरी भावना

(श्री ज्योतिप्रसाद जी कृत)

भावना भगवान मेरी सब सुखी संसार हो,
सत्य संयम शील का व्यवहार घर घर बार हो ।
धर्म का प्रचार हो और देश का उद्धार हो,
और यह उजड़ा हुआ भारत चमन गुलजार हो ।

रोशनी से ज्ञान की संसार में प्रकाश हो,
धर्म की तलवार से हिंसा का सत्यानाश हो।
शांति औ आनन्द का हर एक घर में वास हो,
वीर-वाणी पर सभी संसार का विश्वास हो।
रोग और भय शोक होवे दूर सब, परमात्मा,
कर सकें कल्याण अपना सब जगत की आत्मा।

卐

समाधिमरण

(कवि श्री द्यानतराय जी कृत)

गौतम स्वामी वन्दों नामी मरणसमाधि भला है।
मैं कब पाऊं निसदिन ध्याऊं गाऊं वचन कला है॥
देव धरम गुरु प्रीति महा दृढ़ सात व्यसन नहीं जाने।
त्यागि बाईस अभक्ष संयमी बारह व्रत नित ठाने॥१॥

चक्की उखरी चूलि बुहारी पानी त्रस न विराधे।
बनिज करे पर द्रव्य हरे नहिं छहों करम इमि साधे॥
पूजा शास्त्र गुरुन की सेवा संयम तप चहु दानी।
पर उपकारी अल्प अहारी सामायक विधि ज्ञानी॥२॥

जाप जपे तिहुं योग धरे दृग तन की ममता टारैं।
अन्त समय वैराग्य सम्हारे ध्यान समाधि विचारैं।
आग लगे अरु नाव डुबे जल धर्म विघन जब आवे।
चार प्रकार अहार त्याग के मन्त्र सु मन में ध्यावे॥३॥

रोग असाध्य जहां बहु देखे कारण और निहारे।
बात बड़ी है जो बनि आवे भार भवन को डारे॥

जो न बने तो घर में रह कर सब सों होय निराला ।
मात पिता सुत तिय को सौंपे निज परिग्रह अहि काला ॥४॥

कछु चैत्यालय कछु श्रावक जन कछु दुखिया धन देई ।
क्षमा क्षमा सब ही सों कहिके मन की शल्य हनेई ॥
शत्रुन सों मिलि निज कर जोरे मैं बहु करी है बुराई ।
तुमसे प्रीतम को दुख दीने ते सब बकसो भाई ॥५॥

धन धरती जो मुख सों मांगे सो सब दे संतोषे ।
छहों कायके प्राणी ऊपर करुणा भाव विशेषे ॥
ऊंच नीच घर बैठ जगह इक कछु भोजन कछु पय ले ।
दूधा—हारी क्रम क्रम तजिके छाछ अहार पहेले ॥६॥

छाछ त्यागि के पानी राखे पानी तजि संथारा ।
भूमिमांहि थिर आसन मांड़े साधर्मी ढिग प्यारा ॥
जब तुम जानो यह न जपै है तब जिनवानी पढ़िये ।
यों कहि मौन लियो सन्यासी पंच परम पद गहिये ॥७॥

चौ आराधन मन में ध्यावे बारह भावन भावे ।
दशलक्षण मन धर्म विचारे रत्नत्रय मन लावे ॥
पैंतिस सोलह षट पन चौ दुइ इकही वरन विचारे ।
काया तेरी दुखकी ढेरी ज्ञान—मई तू सारे ॥८॥

अजर अमर निज गुण सों पूरे परमानन्द सुभावे ।
आनन्दकन्द चिदानन्द साहब तीन जगतपति ध्यावे ॥
क्षुधा तृषादिक होइ परीषह सहै भाव सम राखै ।
अतीचार पांचों सब त्यागे ज्ञान सुधारस चाखे ॥९॥

हाड़ मांस सब सूखि जांय जब धरम लीन तन त्यागे ।
अद्भुत पुण्य उपाय सुरग में सेज उठे ज्यों जागे ॥

तहं तें आवे शिवपद पावे विलसे सुक्ख अनन्तो ।
द्यानत यह गति होय हमारी जैनधरम जयवन्तो॥१०॥

卐

समाधिमरण

(पं० सूरचन्द जी कृत)

वन्दों श्री अरहंत परम गुरु जो सब को सुखदाई,
इस जग में दुख जो मैं भुगते सो तुम जानो राई ।
अब मैं अरज करूं प्रभु तुम से कर समाधि उर माहीं,
अंत समय में यह वर माँगू सो दीजे जग राई ॥१॥

भव भव में तन धार नये मैं भव भव शुभ संग पायो,
भव भव में नृप ऋद्धि लई मैं मात पिता सुत थायो ।
भव भव में तन पुरुषतनो धर नारी हू तन लीनों,
भव भव में मैं भयो नपुंसक आतम गुण नहिं चीनो ।२।

भव भव में सुर-पदवी पाई ताके सुख अति भोगे,
भव भव में गति नरकतनी धर दुख पाये विधियोगे ।
भव भव में तिर्यंच योनि धर पायो दुख अति भारी,
भव भव में साधर्मी जनको संग मिलो हितकारी ।३।

भव भव में जिन-पूजन कीनी दान सुपात्रहिं दीनो,
भव भव में मैं समवशरण में देखो जिनगुण भीनो ।
ऐती वस्तु मिली भव भव में सम्यक् गुण नहिं पायो,
ना समाधि-युत मरण कियो मैं तातें जग भरमायो ४।

काल अनादि भयो जग भ्रमते सदा कुमरणहिं कीनो,
एक बार हू सम्यक्युत निज आतमगुण नहिं चीनो ।

जो निज-पर को ज्ञान होय तो मरण समय दुख कांई,
देह विनाशी मैं निज भाषी ज्योतिस्वरूप सदाई ॥५॥

विषय कषायन के वश होकर देह आपनो जानो,
कर मिथ्या सरधान हिये बिच आतम नाहिं पिछानो।
यों कलेश हिय धार मरण कर चारों गति भरमायो,
सम्यक्दर्शन ज्ञान तीन ये हिरदय में नहिं लायो ॥६॥

अब या अर्ज करूं प्रभु सुनिये मरण समय यह मांगो,
रोगजनित पीड़ा मत होऊ अरु कषाय मत जागो।
ये दुख मरण समय दुखदाता इन हर साता कीजे,
जो समाधियुत मरण होय सुख अरु मिथ्यामद छीजे।७।

यह तन सात कुधात-मई है देखत ही घिन आवे,
चर्मलपेटी ऊपर सोहे भीतर विष्टा पावे।
अति दुर्गन्ध अपावन सो यह मूरख प्रीति बढ़ावे,
देह विनाशी यह अविनाशी नित्य स्वरूप कहावे ॥८॥

यह तन जीर्ण कुटी सम आतम यातें प्रीति न कीजे,
नूतन महल मिले जब भाई तब यामें क्या छीजे।
मृत्यु होन से हानि कौन है याको भय मत लावो,
समता से जो देह तजोगे तो शुभ तन तुम पावो।९।

मृत्यु मित्र उपकारी तेरो इस अवसर के मांही,
जीरन तन से देत नयो यह या सम साहू नाहीं।
या सेती इस मृत्यु समय पर उत्सव अति ही कीजे,
क्लेश भाव को त्याग सयाने समता-भाव धरीजे।१०।

जो तुम पूरव पुण्य किये हैं तिनको फल सुखदाई,
मृत्यु--मित्र बिन कौन दिखावे स्वर्ग-सम्पदा भाई।

रागद्वेष को छोड़ सयाने सात व्यसन दुखदाई,
अंत समय में समता धारो परभव पंथ सहाई ।११।

कर्म महा—दुठ बैरी मेरो ता सेती दुख पावे,
तन-पिंजरे में बंद कियो मोहि यासे कौन छुड़ावे ।
भूख तृषा दुःखादि अनेकन इसही तन में गाढ़े,
मृत्युराज अब आय दया कर तन-पिञ्जरे से काढ़े ।१२।

नाना वस्त्राभूषण मैंने इस तन को पहिराये,
गंध सुगंधित अतर लगाये, षटरस असन कराये ।
रात दिना में दास होयकर सेव करी तन केरी,
सो तन मेरे काम न आयो भूल रहो निधि मेरी ।१३।

मृत्युराय को शरण पाय तन नूतन ऐसो पाऊं,
तामें सम्यक रतन तीन लह आठों कर्म खपाऊं ।
देखो तनसम और कृतघ्नी नाहिं सो या जगमांही,
मृत्यु समय में ये ही परिजन सब ही हैं दुखदाई।१४।

यह सब मोह बढ़ावनहारे जियको दुर्गति--दाता,
इनसे ममत निवारो जियरा जो चाहो सुख साता ।
मृत्यु-कल्पद्रुम पाय सयाने मांगो इच्छा जेती,
समता धरकर मृत्यु करो तो पावो सम्पति तेती ।१५।

चौआराधन सहित प्राण तज तो ये पदवी पावो,
हरि प्रतिहरि चक्री तीर्थेश्वर स्वर्ग मुक्तिमें जावो ।
मृत्यु कल्पद्रुम सम नहिं दाता तीनो लोक मंझारे,
ताको पाय किलेश करो मत जन्म जवाहर हारे।१६।

इस तन में क्या राचे जियरा दिन दिन जीरण होहै,
तेज कांति बल नित्य घटत है या सम अथिर सो को है ।

गानो इंद्रिय शिथिल भये सब त्याग ज्ञान नहीं पावे,
ता पर भी सफला नहिं ..रे समता उर नहिं लावे ।१७।

मृत्युराज उपकारी जिय को तन सों तोहि छुड़ावे,
नातर या तन बंदीगृह में परो परो बिललावे ।
पुद्गल के परमाणु मिलके पिंडरूप तन भासी,
यही मूरती में अमूरती ज्ञानज्योति गुण रासी ।१८।

रोग शोक आदिक जो वेदन ते सब पुद्गल लारे,
मैं तो चेतन व्याधि बिना नहिं हैं सो भाव हमारे ।
या तनसे इस क्षेत्र सम्बन्धी कारण आन बनो है,
खान पान दे याको पोषो अब समभाव ठनो है ।१९।

मिथ्यादर्शन आत्मज्ञान बिन यह तन अपनो जानो,
इन्द्री भोग गिने सुख मने आपो नाहिं पिछानो ।
तन विनशन तें नाश जान निज यह अयान दुखदाई,
कुटुम्ब आदि को अपनो जानो भूल अनादी छाई ।२०।

अब निज भेद यथारथ समझो मैं हूँ ज्योति स्वरूपी,
उपजै विनसै सो यह पुद्गल जानो याको रूपी ।
इष्ट निष्ट जेते सुख दुख है सो सब पुद्गल सागे,
मैं जब अपनो रूप विचारो तब वे सब दुख भागे ।२१

बिन समता तन नंत धरे मैं तिन में ये दुख पाये,
शस्त्रघात तें नंत बार मर नाना योनि भ्रमाये ।
बार नंत ही अग्नि माहिं जर मूवो सुमति न लायौ
सिंह व्याघ्र अहि नंतबार मुझ नाना दुःख दिखायो ।२२।

बिन समाधि ये दुःख लहे मैं अब उर समता आई,
मृत्युराज को भय नहिं मानो देवैं तन सुखदाई ।

याते जब लग मृत्यु न आवे तब लग जप तप कीजे,
जप तप बिन इस जगके माही कोई भी ना सीजे ।२३।

स्वर्ग सम्पदा तप से पावें, तप से कर्म नशावें,
तपही से शिव कामिन पति ह्वै, यासों तप चित लावे ।
अब मैं जानी समता बिन मुझ कोऊ नाहिं सहाई,
मात पिता सुत बांधव तिरिया ये सब हैं दुखदाई ।२४।

मृत्यु समय में मोह करें ये तातें आरत हो है,
आरत तें गति नीची पावे यों लख मोह तजो है।
और परिग्रह जेते जग में तिन से प्रीति न कीजे,
परभव में ये संग न चालें नाहक आरत कीजे ।२५।

जे जे वस्तु लखत हैं ते पर तिन से नेह निवारो,
पर गति में ये संग न चालें ऐसो भाव विचारो ।
जो पर भव में संग चलें तुझ तिन से प्रीति सु कीजे,
पंच पाप तज समता धारो दान चार विधि दीजे ।२६।

दशलक्षण मय धर्म धरो उर अनुकम्पा चित लावो,
षोडश कारण नित्य चितवो द्वादश भावन भावो ।
चारों परवी प्रोषध कीजे अशन रात को त्यागो,
समता धर दुर्भाव निवारो संयम सो अनुरागो ।२७।

अंत समय में ये शुभ भावहि होवें आन सहाई,
स्वर्ग मोक्षफल तोहि दिखावें ऋद्धि देंहि अधिकाई ।
खोटे भाव सकल जिय त्यागो उरमें समता लाके,
जा सेती गति चार दूर कर बसो मोक्षपुर जाके ।२८।

मन थिरता करके तुम चिंतो चौ आराधन भाई,
येही तोको सुख की दाता और हितू कोउ नाहीं ।

जाके भद्र मुनिराज भये तें तिन मांहि थिरता धारी,
बहु उपसर्ग सहे शुभ भावन आराधन उर धारी ।२९।

तिनमें कछु इक नाम कहूं मैं सो सुन जिय ! चित लाके,
भाव सहित अनुमोदै तासे दुर्गति होय न जाके ।
अरु समता निज उर में आवे भाव अधीरज जावे,
यों निशदिन जो उन मुनिवरको ध्यान हिये बिच लावे ।३०।

धन्य धन्य सुकुमाल महामुनि कैसे धीरज धारी,
एक स्यालनी जुग बच्चाजुत पांव भख्यो दुखकारी ।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता आराधन चित धारी,
तो तुमरे जिय कौन दुःख है मृत्यु महोत्सव बारी ।३१। टेक

धन्य धन्य जो सुकौशल स्वामी व्याघ्री ने तन खायो ।
तो भी श्री मुनि नेक डिगे नहिं आतमसों हित लायो ॥३२॥ टेक

देखो गजमुनि के सिर ऊपर विप्र अगिन बहु जारी ।
शीश जले जिम लकड़ी तिनको तोभी नाहिं चिगारी ॥३३॥ टेक

सनतकुमार मुनी के तन में कुष्ठ वेदना व्यापी ।
छिन्न भिन्न तन तासों हूवो तब चिंतो गुण आपी ॥३४॥ टेक

श्रेणिक सुत गङ्गामें डूबो तब जिन नाम चितारो ।
धर संल्लेखन परिग्रह छांडो शुद्धभाव उर धारो ॥३५॥ टेक

समन्तभद्र मुनिवर के तन में क्षुधा वेदना आई ।
ता दुखमें मुनि नेक न डिगियो चिंतो निजगुण भाई ॥३६॥ टेक

ललित घटादी तीस दोय मुनि कौशांबीतट जानो ।
नदी में मुनि बहकर मूवे सो दुख उन नहिं मानो ॥३७॥ टेक

धर्मघोष मुनि चम्पानगरी बाह्य ध्यान धर ठाडो ।
एक मास की कर मर्यादा तृषा दुःख सह गाढ़ो ॥३८॥ टेक

श्रीदत्त मुनि के पूर्व जन्म कौ वैरी देव सो आके।
विक्रिय कर दुख शीत तनो सो सहो साधु मन लाके।३९॥ टेक
वृषभसेन मुनि उष्ण शिला पर ध्यान धरो मनलाई।
सूर्य घाम अरु उष्ण पवन की वेदन सहि अधिकाई॥४०॥ टेक
अभयघोष मुनि काकन्दीपुर महा वेदना पाई।
वैरी चंडने सब तन छेदो दुख दीनो अधिकाई॥४१॥ टेक
विद्युतचर ने बहु दुख पायो तौ भी धीर न त्यागी।
शुभ भावन से प्राण तजे निज धन्य और बड़भागी॥४२॥ टेक
पुत्र चिलाती नामा मुनि को वैरी ने तन घातो।
मोटे मोटे कीट पड़े तन तापर निज गुण रातो॥४३॥ टेक
दण्डक नामा मुनिकी देहीबाणन कर अरि भेदी।
तापर नेक डिगे नहिं वे मुनि कर्म महा रिपु छेदी॥४४॥ टेक
अभिनंदन मुनि आदि पांचसौ घानो पेलि जो मारे।
तौ भी श्रीमुनि समता धारी पूरव कर्म विचारे।.४५॥ टेक
चाणक मुनि गोघर के माही मून्द अगिनि परजालो।
श्रीगुरु उर समभाव धारके अपनो रूप सम्हालो॥४६॥ टेक
सात शतक मुनिवर ने पायो हथिनापुर में जानो।
बलि ब्राह्मण कृत घोर उपद्रव सो मुनिवर नहिं मानो॥४७। टेक
लोहमयी आभूषण गढ़के ताते कर पहराये।
पाँचों पांडव मुनि के मन में तौभी नाहिं चिगाये।४८॥ टेक
और अनेक भये इस जग में समता-रस के स्वादी।
वेही हम को हो सुख—दाता हरहैं टेव प्रमादी॥
सम्यक्दर्शन ज्ञान चरन तप ये आराधन चारों।
ये ही मोको सुख की दाता इन्हें सदा उर धारों॥४९॥

यों समझाय हृदय [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] जानो ।
तब [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
जो कोई नित करत पयानो ग्रामांतर के काजे ।
सो भी सगुन विचारे नीके शुभ शुभ कारण साजे ॥५०॥

मातपितादिक सब कुटुंबी नीके सगुन बनावें ।
हल्दी धनिया पुंगी अक्षत दूध दही फल लावें ॥
एक ग्राम के कारण एते करें शकुन शुभ सारे ।
जब पर गति को करत पयानो तब नहिं सोचें प्यारे ॥५१॥

सर्व कुटुम्ब जब रोवन लागें तोहि रुलावें सारे ।
ये अपशुकन करें सुन ताकूं तू यों क्यों न विचारे ॥
अब परगति को चालत विरियां धर्मध्यान उर आनो ।
चारों आराधन आराधो मोह—तनो दुख हानो ॥५२॥

हो निःशल्य तजो सब दुविधा आतमराम सु ध्यावो ।
जब पर गति को करहु पयानो परम तत्व उर लावो ॥
मोहजाल को काट प्यारे अपनो रूप विचारो ।
मृत्यु मित्र उपकारी तेरो यों उर निश्चय धारो ॥५३॥

दोहा

मृत्यु महोत्सव पाठ को सुनो पढ़ो बुधिवान ।
सरधा धर नित सुख लहो सूरचद शिवथान ॥५४॥

पंच उभय नव एक नभ संवत सो सुखदाय ।
आश्विन श्यामा सप्तमी कहौ पाठ मन लाय ॥५५॥

❀ समाप्त ❀

अध्यात्मप्रेमी कविवर पं० दौलतरामजी कृत—

छहढाल—मूल

पहली ढाल

(सोरठा छन्द)

: मंगलाचरण :

तीन-भुवनमें सार, वीतराग विज्ञानता ।
शिवस्वरूप शिवकार, नमहुँ त्रियोग-सम्हारिकैं ॥

(चौपाई छन्द)

जे त्रिभुवन में जीव अनन्त, सुख चाहैं दुखतैं भयवंत ।
तातैं दुखहारी सुखकार, कहैं सीख गुरु करुणा धार ॥१॥

ताहि सुनो भवि मन थिर आन, जो चाहो अपनो कल्याण ।
मोहमहामद पियो अनादि, भूल आपको भरमत वादि ॥२॥

तास भ्रमण की है बहु कथा, पै कछु कहूँ कही मुनि यथा ।
काल अनन्त निगोद मंझार, वीत्यो एकेन्द्री तन धार ॥३॥

एक स्वास में अठ दस बार, जन्म्यो मर्यो, भर्यो दुखभार ।
निकसि भूमि जल पावक भयो, पवन प्रत्येक वनस्पति थयो ॥४॥

दुर्लभ लहि ज्यों चिन्तामणी, त्यों पर्याय लही त्रसतणी ।
लट-पिपील-अलि आदि शरीर, धर धर मर्यो सही बहु पीर ॥५॥

कबहूँ पंचेंद्रिय पशु भयो, मन-बिन निपट अज्ञानी थयो ।
सिंहादिक सैनी ह्वै क्रूर, निबल पशु हति खाये भूर ॥६॥

कबहू आप भयो बलहीन, सबलनि करि खायो अतिदीन ।
छेदन भेदन भूख पियास, भार-वहन हिम-आतप-त्रास ॥७॥

वध बंधन आदिक दुख घने, कोटि जीभतें जात न भनै ।
अति संक्लेश भावतें मर्यो, घोर श्वभ्रसागर में पर्यो ॥८॥

तहाँ भूमि परसत दुख इसो, बीछू सहस डसे नहिं तिसो ।
तहाँ राध-श्रोणित वाहिनी, कृमि कुल कलित देहदाहिनी ॥९॥

सेमरतरु जुत दल असिपत्र, असि ज्यों देह विदारैं तत्र ।
मेरु समान लोह गलि जाय, ऐसी शीत उष्णता थाय ॥१०॥

तिल तिल करैं देहके खण्ड, असुर भिड़ावैं दुष्ट प्रचण्ड ।
सिंधु नीरतैं प्यास न जाय, तो पण एक न बूंद लहाय ॥११॥

तीन लोक को नाज जु खाय, मिटै न भूख. कणा न लहाय ।
ये दुख बहु सागरलौं सहै, करम जोगतें नरगति लहै ॥१२॥

जननी उदर वस्यो नव मास, अङ्ग सकुचतें पाई त्रास ।
निकसत जे दुख पाये घोर, तिनको कहत न आवै ओर ॥१३॥

बालपने में ज्ञान न लह्यो, तरुण समय तरुणी रत रह्यो ।
अर्द्धमृतक सम बूढ़ापनो, कैसे रूप लखै आपनो ॥१४॥

कभी अकाम निर्जरा करै, भवनत्रिक में सुरतन धरै ।
विषय चाह दावानल दह्यो, मरत विलाप करत दुख सह्यो ॥१५॥

जो विमानवासी हू थाय, सम्यग्दर्शन बिन दुख पाय ।
तहँ तैं चय थावर तन धरै, यों परिवर्तन पूरे करै ॥१६॥

दूसरी ढाल

(पद्धरी छन्द)

ऐसे मिथ्या-दृगज्ञानचर्ण, वश भ्रमत भरत दुख जन्म मर्ण ।
तातैं इनको तजिये सुजान, सुन तिन संक्षेप कहूं बखान ॥१॥

जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्व, सरधैं तिनमाहिं विपर्ययत्व ।
चेतन कौ है उपयोग रूप, विनमूरति चिनमूरति अनूप ॥२॥

पुद्गल नभ धर्म अधर्म काल, इनतैं न्यारी है जीव चाल ।
ताकों न जान विपरीत मान करि, करैं देह में निज पिछान ॥३॥

मैं सुखी दुखी मैं रंक राव, मेरे धन गृह गोधन प्रभाव ।
मेरे सुत तिय, मैं सबल दीन, बेरूप सुभग मूरख प्रवीन ॥४॥

तन उपजत अपनी उपज जान, तन नशत आपको नाश मान ।
रागादि प्रगट ये दुःख दैन, तिनही को सेवत गिनत चैन ॥५॥

शुभ अशुभ बंधके फल मँझार, रति अरति करैं निजपद विसार ।
आतमहित हेतु विराग ज्ञान, ते लखैं आपकौं कष्टदान ॥६॥

रोकै न चाह निज शक्ति खोय, शिवरूप निराकुलता न जोय ।
याही प्रतीतिजुत कछुक ज्ञान, सो दुखदायक अज्ञान जान ॥७॥

इन जुत विषयनि में जो प्रवृत्त, ताकौं जानों मिथ्याचरित्त ।
यों मिथ्यात्वादि निसर्ग जेह, अब जे गृहीत सुनिये सु तेह ॥८॥

जो कुगुरु कुदेव कुधर्म सेव, पोषैं चिर-दर्शनमोह एव ।
अन्तर रागादिक धरैं जेह, बाहर धन अंबरतैं सनेह ॥९॥

धारैं कुलिंग लहि महत भाव, ते कुगुरु जन्म जल उपलनाव ।
जे राग-द्वेष मलकरि मलीन, वनिता-गदादिजुत चिन्ह चीन्ह ॥१०॥

जीव अजीव तत्व अरु आस्रव, बंध रु संवर जानो ।
निर्जर मोक्ष कहे जिन तिनको, ज्यों को त्यों सरधानो ॥
है सोई समकित विवहारी, अब इन रूप बखानों ।
तिनको सुन सामान्य विशेषं, दिढ़ प्रतीति उर आनो ॥३॥

बहिरातम अन्तर आतम, परमातम जीव त्रिधा है ।
देह जीव को एक गिनैं, बहिरातम तत्वमुधा है ॥
उत्तम मध्यम जघन त्रिविधके, अन्तर-आतम ज्ञानी ।
द्विविधि संग विन शुध उपयोगी, मुनि उत्तम निज ध्यानी ॥४॥

मध्यम अन्तर आतम हैं जे, देशव्रती आगारी ।
जघन कहे अविरत-समदृष्टी, तीनों शिवमगचारी ॥
सकल निकल परमातम द्वै विधि, तिनमे घाति निवारी ।
श्री अरहंत सकल-परमातम, लोकालोक निहारी ॥५॥

ज्ञानशरीरो, त्रिविधि कर्म-मल-वर्जित सिद्ध महंता ।
ते हैं निकल अमल परमातम, भोगैं शर्म अनन्ता ॥
बहिरातमता हेय जानि तजि, अन्तर आतम हूजै ।
परमातमको ध्याय निरन्तर, जो नित आनन्द पूजै ॥६॥

चेतनता विन सो अजीव है, पंच भेद ताके हैं ।
पुद्गल पंच वरन, रस गन्ध—दु, फरस वसु जाके हैं ॥
जिय पुद्गल को चलन सहाई, धर्मद्रव्य अनरूपी ।
तिष्ठत होय अधर्म सहाई, जिन विन-मूर्ति निरूपी ॥७॥

सकल द्रव्य को वास जास में, सो आकाश पिछानो ।
नियत वर्तना, निसदिन सो, व्यवहारकाल परिमानो ॥
यो अजीव, अब आस्रव सुनिये, मन वच काय त्रियोगा ।
मिथ्या अविरत अरु कषाय, परमाद सहित उपयोगा ॥८॥

जीव अजीव तत्व अरु आस्रव, बंध रु संवर जानो।
निर्जर मोक्ष कहे जिन तिनको, ज्यों को त्यों सरधानो ॥
है सोई समकित विवहारी, अब इन रूप बखानों।
तिनको सुन सामान्य विशेषै, दिढ़ प्रतीति उर आनो ॥३॥

बहिरातम अन्तर आतम, परमातम जीव त्रिधा है।
देह जीव को एक गिनैं, बहिरातम तत्वमुधा है ॥
उत्तम मध्यम जघन त्रिविधके, अन्तर-आतम ज्ञानो।
द्विविधि संग बिन शुध उपयोगी, मुनि उत्तम निज ध्यानो ॥४॥

मध्यम अन्तर आतम हैं जे, देशव्रती आगारी।
जघन कहे अविरत-समदृष्टी, तीनों शिवमगचारी ॥
सकल निकल परमातम द्वै विधि, तिनमें घाति निवारी।
श्री अरहंत सकल-परमातम, लोकालोक निहारी ॥५॥

ज्ञानशरीरी, त्रिविधि कर्म-मल-वर्जित सिद्ध महंता।
ते हैं निकल अमल परमातम, भोगैं शर्म अनन्ता ॥
बहिरातमता हेय जानि तजि, अन्तर आतम हूजे।
परमातमको ध्याय निरन्तर, जो नित आनन्द पूजे ॥६॥

चेतनता बिन सो अजीव है, पंच भेद ताके हैं।
पुद्गल पंच वरन, रस गंध—दु, फरस वसु जाके हैं ॥
जिय पुद्गल को चलन सहाई, धर्मद्रव्य अनरूपी।
तिष्ठत होय अधर्म सहाई, जिन बिन-मूर्ति निरूपी ॥७॥
सकल द्रव्य को वास जास में, सो आकाश पिछानो।
नियत वर्तना, निसदिन सो, व्यवहारकाल परिमानो ॥
यों अजीव, अब आस्रव सुनिये, मन वच काय नियोगा।
मिथ्या अविरत अरु कषाय, परमाद सहित उपयोगा ॥८॥

[illegible]

तीसरी ढाल

(नरेन्द्र छन्द : जोगीरासा)

आतम को हित है सुख, सो सुख आकुलता बिन कहिये ।
आकुलता शिवमांहि न तातें, शिवमग लाग्यो चहिये ॥
सम्यक्‌दर्शन-ज्ञान-चरन शिव,-मग सो दुविध विचारो ।
जो सत्यारथ-रूप सु निश्चय, कारण सो व्यवहारो ॥१॥

परद्रव्यनतैं भिन्न आप में रुचि, सम्यक्त्व भला है ।
आप रूप को जानपनो सो, सम्यक्‌ज्ञान कला है ॥
आपरूप में लीन रहे थिर, सम्यक्‌चारित सोई ।
अब व्यवहार मोख-मग सुनिये, हेतु नियत को होई ॥२॥

दोष रहित गुण सहित सुधी जे, सम्यकदर्श सजै हैं।
चरितमोह वश लेश न संजम, पै सुरनाथ जजै हैं॥
गेही, पै गृह में न रचै ज्यों, जल से भिन्न कमल है।
नगर-नारिको प्यार यथा, कादे में हेम अमल है॥१५॥

प्रथम नरक विन षट भू ज्योतिष, वान भवन षंढ नारी।
थावर विकलत्रय पशु में नहिं, उपजत सम्यक्धारी॥
तीन लोक तिहुंकाल माँहि नहिं, दर्शन सो सुखकारी।
सकल धरम को मूल यही, इस विन करनो दुखकारी॥१६॥

मोक्ष-महल की परथम सीढ़ी, या विन ज्ञान चरित्रा।
सम्यकता न लहै, सो दर्शन, धारौ भव्य पवित्रा॥
'दौल' समझ सुन चेत सयाने, काल वृथा मत खोवै।
यह नरभव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक नहिं होवै॥१७॥

卐

चौथी ढाल

(दोहा)

सम्यक् श्रद्धा धारि पुनि, सेवहु सम्यग्ज्ञान।
स्वपर-अर्थ बहु धर्मजुत, जो प्रगटावन भान॥

(रोला छन्द)

सम्यक् साथै ज्ञान होय, पै भिन्न अराधो।
लक्षण श्रद्धा जानि, दुहूमें भेद अबाधो॥
सम्यक् कारण जान, ज्ञान कारज है सोई।
युगपत होते हू, प्रकाश — दीपकतैं होई॥१॥

ये ही आतम को दुखकारण, तातैं इनको तजिये।
जीव प्रदेश बँधे विधि सों सो, बंधन कबहुँ न सजिये॥
शम-दमतें जो कर्म न आवें, सो संवर आदरिये।
तप-बलतें विधि-झरन निर्जरा, ताहि सदा आचरिये॥९॥
सकल कर्म तें रहित अवस्था, सो शिव, थिर सुखकारी।
इहि विधि जो सरधा तत्त्वन की, सो समकित व्यवहारी॥
देव जिनेन्द्र, गुरु परिग्रह बिन, धर्म दयाजुत सारो।
येहु मान समकित को कारण, अष्ट-अंग-जुत धारो॥१०॥
वसु मद टारि, निवारि त्रिशठता, षट् अनायतन त्यागो।
शंकादिक वसु दोष बिना, संवेगादिक चित पागो॥
अष्ट अंग अरु दोष पचीसों, तिन संक्षेपहु कहिये।
बिन जाने तें दोष गुनन को, कैसे तजिये गहिये॥११॥
जिन-वच मे शंका न धार, वृष, भव-सुख-वांछा भानै।
मुनि--तन मलिन न देख घिनावै, तत्त्व कुतत्त्व पिछानै॥
निज गुण अरु पर औगुण ढांके, वा निज धर्म बढ़ावै।
कामादिक कर वृषतें चिगते, निज परको सु दिढ़ावै॥१२॥
धर्मी सो गौ--वच्छ--प्रीति--सम, कर जिनधर्म दिपावै।
इन गुनतें विपरीत दोष वसु, तिनको सतत खिपावै॥
पिता भूप वा मातुल नृप जो, होय न तौ मद ठानै।
मद न रूप कौ, मद न ज्ञान कौ, धन बल कौ मद भानै॥१३॥
तपकौ मद न, मद जु प्रभुताकौ, करै न सो निज जानै।
मद धारै तौ यही दोष वसु, समकित को मल ठानै॥
कुगुरु-कुदेव--कुवृष सेवक की, नहिं प्रशंस उचरै है।
जिनमुनि जिनश्रुत बिन, कुगुरादिक तिन्हे न नमन करै है॥१४॥

जिन परम पैनी सुबुधि छैनी, डारि अन्तर भेदिया ।
वरणादि अरु रागादितैं, निज भावको न्यारा किया ॥
निजमाहिं निजके हेतु निजकर, आपको आपै गह्यौ ।
गुण गुणी ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय,-मझार कछु भेद न रह्यौ ॥८॥

जहँ ध्यान ध्याता ध्येय को न विकल्प, वच-भेद न जहाँ ।
चिद्भाव कर्म चिदेश करता, चेतना किरिया तहाँ ॥
तीनों अभिन्न अखिन्न सुध,-उपयोग की निश्चल दशा ।
प्रगटी जहां दृग-ज्ञान-व्रत ये, तीनधा एकै लसा ॥९॥

परमाण नय निक्षेप कौ, न उद्योत अनुभव में दिखै ।
दृग-ज्ञान-सुख-बल-मय सदा,-नहिं आन भाव जु मो विखै ॥
मैं साध्य साधक, मैं अबाधक, कर्म अरु तसु फलनितैं ।
चितपिंड चंड अखण्ड सुगुण-करंड, च्युत पुनि कलनितैं ॥१०॥

यों चिन्त्य निज में थिर भये, तिन अकथ जो आनन्द लह्यौ ।
सो इन्द्र नाग नरेन्द्र वा, अहमिन्द्रकै नाहीं कह्यौ ॥
तब ही शुकल-ध्यानाग्नि करि, चउ घाति विधि कानन दह्यौ ।
सब लख्यो केवलज्ञानकरि, भवलोकको शिवमग कह्यौ ॥११॥

पुनि घाति शेष अघाति विधि, छिनमाहिं अष्टम-भू वसैं ।
वसु कर्म विनसैं सुगुण वसु, सम्यक्त आदिक सब लसैं ॥
संसार खार अपार—पारावार तरि तीरहिं गये ।
अविकार अकल अरूप शुचि, चिद्रूप अविनाशी भये ॥१२॥

निजमाहिं लोक अलोक, गुण-परजाय प्रतिबिम्बित थये ।
रहिहैं अनन्तानन्त काल, यथा तथा शिव परणये ॥
धनि धन्य हैं जे जीव, नरभव पाय पद कारज किया ।
तिनही अनादी भ्रमण पंच प्रकार तजि, वर सुख लिया ॥१३॥

रागादि भाव निवारतें, हिंसा न भावित अवतरी ॥
जिनके न लेश मृषा न जल मृण हू बिना दीयो गहें ।
अठदशसहस विध शील धर, चिद्ब्रह्म में नित रमि रहें ।२।

छयालीस दोष बिना सुकुल श्रावक तने घर अशन को ।
लें तप बढ़ावन हेत, नहिं तन पोषते तजि रसन को ॥
शुचि ज्ञान संयम उपकरण, लखिकें गहें लखिकें धरें ।
निर्जन्तु थान विलोकि तन,-मल मूत्र श्लेष्म परिहरें ॥३॥

सम्यक् प्रकार निरोध मन-वच-काय, आतम ध्यावते ।
तिन सुथिर मुद्रा देखि मृगगण, उपल खाज खुजावते ॥
रस रूप गंध तथा फरस--अरु, शब्द शुभ असुहावने ।
तिनमें न राग विरोध, पंचेन्द्रिय-जयन पद पावने ॥४॥

समता सम्हारें थुति उचारें, वन्दना जिनदेव को ।
निज करें श्रुतरति करें प्रतिक्रम, तजें तन अहमेव को ॥
जिनके न न्हौन न दतधोवन, लेश अंबर आवरन ।
भूमाहि पिछली रयनि मे कछु, शयन एकासन करन ॥५॥

इक बार दिन में लै अहार, खड़े अलप निज पान में ।
कचलोंच करत न डरत परिषह सों, लगे निज-ध्यान मे ॥
अरि मित्र महल मसान कंचन, काच निंदन थुतिकरन ।
अर्घावतारन असि--प्रहारन में, सदा समता धरन ॥६॥

तप तपें द्वादश धरै वृष दश, रतनत्रय सेवें सदा ।
मुनि साथ में वा एक विचरें, चहै नहिं भवसुख कदा ॥
यों है सकल संयमचरित, सुनिये स्वरूपाचरन अब ।
जिस होत प्रगटे आपनी निधि, मिटै पर की प्रवृत्ति सब ॥७।

मुख्योपचार दु भेद यों बड़भागि रत्नत्रय धरैं ।
अरु धरेंगे ते शिव लहैं, तिन सुयश-जल जगमल हरैं ॥
इमि जानि आलस हानि, साहस ठानि यह सिख आदरौ ।
जबलौं न रोग जरा गहै, तबलौं झटिति निज हित करौ ॥१४॥

यह राग आग दहै सदा, तातैं समामृत सेइये ।
चिर भजे विषय कषाय अब तो, त्याग निज-पद बेइये ॥
कहा रच्यो पर-पदमें न तेरो, पद यहै क्यों दुख सहै ।
अब दौल ! होउ सुखी स्वपद रचि, दाव मत चूकौ यहै ॥१५॥

× × ×

इक नव वसु इक वर्ष की, तीज शुकल वैशाख ।
कर्यो तत्त्व उपदेश यह, लखि बुधजन की भाख ॥१॥

लघु धी तथा प्रमाद तैं, शब्द अर्थ की भूल ।
सुधी सुधार पढ़ो सदा, जो पावौ भव-कूल ॥२॥

卐

* छहढाला *

[पं० बुधजन कृत]

सर्व द्रव्य में सार, आतम को हितकार है ।
नमो ताहि चितधार, नित्य निरंजन जान के ॥१॥

प्रथम ढाल

[१६ मात्रा चौपाई छन्द]

(इसमें जीवों के संसारभ्रमण दुःखों का कथन है)

आयु घटे तेरी दिन रात, हो निश्चिन्त रहो क्यों भ्रात ।
यौवन तन धन किंकर नारि, हैं सब जल बुदबुद उनहारि ॥१॥

पूरे आयु बढ़े क्षण नाहिं, दर्गे कोड घन तीरथ माहिं ।
इन्द्र चक्रवर्त्ती क्या करें, आयु अन्त पर ते भी मरें ॥२॥

यों संसार असार महान, सार आप में आपा जान ।
सुख से दुख दुखसे सुख होय, ममता चारों गति नहिं कोय ।३।

अनन्तकाल गति अति दुख सह्यो, बाकी काल अनन्ता कह्यो ।
सदा अकेला चेतन एक, तो माहीं गुण बसत अनेक ॥४॥

तू न किसी का तोर न कोय, तेरा दुख सुख तोको होय ।
यासे तुझको तू उर धार, परद्रव्यों से मोह निवार ॥५॥

हाड़ मान्स तन लिपटा चाम, रुधिर मूत्र मल पूरित धाम ।
सो भी थिर न रहै क्षय होय, यासों तजे मिले शिवलोय ॥६॥

हित अनहित तन कुल जनमाहिं, खोटो बानि हरो क्यों नाहिं ।
यासे पुद्गल कर्म नियोग, प्रणवे दायक सुख दुःख रोग ॥७॥

पांचों इंद्रिन के तज फैल, चित्त निरोध लाग शिवगैल ।
तुझ में तेरी तू कर सैल, रहो कहा हो कोल्हू बैल ॥८॥

तज कषाय मन की चल चाल, ध्यावो अपना रूप रसाल ।
झड़ें कर्मबन्धन दुःख-दान, बहुर प्रकाशे केवलज्ञान ॥९॥

तेरा जन्म हुआ नहिं जहाँ, ऐसो क्षेत्र सो नाहीं कहाँ ।
याही जन्म भूमिका रचो, चलो निकलना विधि से बचो ॥१०॥

सब व्यवहार क्रिया का ज्ञान, भया अनंते बार प्रधान ।
निपट कठिन अपनी पहिचान, ताको पावत होय कल्याण ॥११॥

धर्म स्वभाव आप श्रद्धान, धर्म न शील न न्हौन न दान ।
बुधजन गुरु की सीख विचार, गहो धर्म आपन निर्धार ॥१२॥

द्वितीय ढाल

[२८ मात्रा : [illegible]]

([illegible])

सुन रे जीव कहत हूं तोकों तेरे हित के काजे ।
हो निश्चल मन जो तू धारे तब कछु इक तोहि लाजे ॥
जिस दुःख से थावर तन पाया वरण सको सो नाहीं ।
अठारह बार मरा और जनमा इक श्वास के मांही ॥१॥

काल अनन्तानन्त रह्यो यों फिर विकलत्रय हूवो ।
बहुरि असैनी निपट अज्ञानी क्षण क्षण जन्मो मूवो ॥
पुण्य उदय सैनी पशु हूवो बहुत ज्ञान नहिं भालो ।
ऐसे जन्म गये कर्मों वश तेरा जोर न चालो ॥२॥

जबर मिलो तब तोहि सतायो निबल मिलो तैं खायो ।
मात त्रिया सम भोगी पापी तातैं नर्क सिधायो ॥
कोटिक बिच्छू काटैं जैसे ऐसी भूमि जहाँ है ।
रुधिर राधि जल छार बहे जहां दुर्गन्धि निपट तहाँ है ॥३॥

घाव करें असिपत्र अंग में शीत उष्ण तन गालें ।
कोई काटे करवत गहिकर केइ पावक परजालें ॥
यथायोग्य सागर स्थिति भुगतें दुख का अन्त न आवे ।
कर्मविपाक ऐसा ही होवे मानुष गति तब पावे ॥४॥

मात उदर में रहै गैंद हो निकसत ही बिललावे ।
डावा दांक कला विस्फोटक डांकन से बच जावे ॥
तो यौवन में भामिन के संग निशिदिन भोग रचावे ।
अन्धा हो धन्धा दिन खवे बूढ़ा नाड़ि हलावे ॥५॥

यम पकड़े तब जोर न चाले सैन ही सैन बतावे।
मन्द कषाय होय तो भाई भवनत्रक पद पावे॥
पर की सम्पति लखि अति झूरे के रति काल गमावे।
आयु अन्त माला मुरझावे तब लख लख पछतावे॥६॥
तहां से चलके थावर होवे रुलता काल अनन्ता।
या विधि पंच परावर्तन दे दुख का नाहीं अन्ता॥
काललब्धि जिन गुरु कृपा से आप आपको जाने।
तब ही बुधजन भवोदधि तरके पहुँच जाय निर्वाणे॥७॥

卐

तृतीय ढाल

[इसमें सम्यक्त होने का वर्णन है]

(पद्धड़ी छन्द)

इस विधि भववन के माहि जीव, वश मोह गहल सोता सदीव।
उपदेश तथा सहज हि प्रबोध, तब जागो ज्यों रण उठत योध॥१॥
तब चिन्तत अपने माहि आप, मैं चिदानन्द नहि पुण्य पाप।
मेरे नाहीं है रागभाव, ये तो विधि वस उपजे विभाव॥२॥
मैं नित्य निरंजन शिव समान, ज्ञानावरणी आच्छादा ज्ञान।
निश्चय शुद्ध इक व्यवहार नेव, गुणगुणी अंग अंगी अतेव॥३॥
मानुष सुर नारक पशु पर्याय, शिशु ज्वान वृद्ध बहुरूप काय।
धनवान दरिद्री दास राव, यह तो विडम्ब मुझे ना सुहाय॥४॥
स्पर्श गन्ध रस वर्णादि नाम, मेरा नाहीं मैं ज्ञान धाम।
मैं एक रूप नहि होत और, मुझमें प्रतिबिम्बित सकल ठौर॥५॥

तन पुद्गल [illegible] सदीव, ज्यों [illegible] सजीव ।
सब प्रबल अप्रत्याख्यान भाग, तब विषयनि [illegible] ऐसी त्याग ॥६॥
सो सुनो अब निज [illegible], [illegible] ।
सब करें राज [illegible], ज्यों [illegible] निराग ॥७॥
ज्यों सती अगमाहीं [illegible], [illegible] ।
त्यों भाव [illegible], त्यों भोग करत नाहीं सुहाव ॥८॥
जो उदय मोह चारित्रभाव, नहिं होत रंच हू त्यागभाव ।
तहां करें मन्द खोटे कषाय, घरमें उदास हो अथिर थाय ॥९॥
सबको रक्षागुन न्याय नीति, जिनशासन गुरु की दृढ़ प्रतीति ।
बहु रुले अर्द्धपुद्गल प्रमाण, शीघ्रहि मुहूरत ले परम थान ॥१०॥
वे धन्य जीव धन्य भाग्य सोई, जिनके ऐसी सुप्रतीत होई ।
तिनकी महिमा है स्वर्ग लोई, बुधजन भाषे मोसे न होई ॥११॥

卐

चतुर्थ ढाल

[इसमें व्यवहार सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र एकदेश श्रावक धर्म का कथन है ।]

(सोरठा छन्द)

ऊगो आतम सूर दूर गयो मिथ्यात्व तम ।
अब प्रगटो गुणपूर ताको कुछइक कहत हों ॥१॥
शंका मनमें नाहि तत्त्वारथश्रद्धान में ।
निर्वांछिक चितमाहि परमारथ में रत रहैं ॥२॥
नेक न करते ग्लान बाह्य मलिन मुनिजन लखें ।
नाहीं होत अजान तत्त्व कुतत्त्व विचार में ॥३॥

उरमें दया विशेष गुण प्रगटें औगुण ढकें ।
शिथिल धर्म में देख जैसे तैसे थिर करें ॥४॥
साधर्मी पहिचान करें प्रीति गोवच्छ सम ।
महिमा होय महान् धर्मकार्य ऐसे करें ॥५॥
मद नहीं जो नृप तात मद नहीं भूपतिवान को ।
मद नहीं विभव लहात मद नहीं सुन्दर रूप को ॥६॥
मद नहीं होय प्रधान मद नहीं तनमें जोर का ।
मद नहीं जो विद्वान् मद नहीं सम्पतिकोष को ॥७॥
हुओ आतमज्ञान तज रागादि विभाव पर ।
ताको हो क्यों मान जात्यादिक वसु अथिर का ॥८॥
वंदत अरिहंत देव जिन मुनि जिनसिद्धांत को ।
नवें न देख महन्त कुगुरु कुदेव कुधर्म को ॥९॥
कुत्सित आगम देव कुत्सित पुन सुरसेव का ।
प्रशंसा षट् भेव करें न सम्यक्वान हैं ॥१०॥
प्रगटो ऐसा भाव किया अभाव मिथ्यात्व का ।
बन्दत ताके पांय बुधजन मनवचकाय से ॥११॥

卐

पञ्चम ढाल

[इसमें बारह व्रत का वर्णन है]

(मनहरण छन्द)

तिर्यंच मनुष दोय गतिमें, व्रत धारक श्रद्धा चित में ।
सो अगलित नीर न पीवें, निशि भोजन तजें सदीवें ॥१॥

षष्ठम ढाल

(इसमें मुनिधर्म का कथन है)

(रोला छन्द)

अथिर ध्याय पर्याय भोग से होय उदासी ।
नित्य निरंजन ज्योति आत्मा घट में भासी ॥
सुत-दारादि बुलाय सबै से मोह निवारा ।
त्याग नगर धन धाम वास वन बीच विचारा ॥१॥

भूषण वसन उतार नग्न हो आतमा चीन्हा ।
गुरुतट दीक्षा धार शीश कचलुञ्च जु कीना ॥
त्रस-थावर का घात त्याग मन वच तन लीना ।
झूठ वचन परिहार गहैं नहिं जल बिन दीना ॥२॥

चेतन जड़ त्रिय भोग तजो भवभव दुखकारा ।
अहि कंचुकि ज्यों तजत चित्त से परिग्रह टारा ॥
गुप्ति पालने काज कपट मन वच तन नाहीं ।
पांचों समिति सम्हाल परीषह सहि हैं आहीं ॥३॥

छोड़ सकल जगजाल आपकर आप आप में ।
अपने हित को आप किया है शुद्ध जाप में ॥
ऐसी निश्चल काय ध्यान में मुनिजन केरी ।
मानों पत्थर रची किधों चित्राम चितेरी ॥४॥

चारि घातिया घात ज्ञान में लोक निहारा ।
दे जिनमति उपदेश भव्यों को दुःख से टारा ॥
बहुरि अघातिया तोड़ समय में शिवपद पाया ।
अलख अतींद्रिय ज्योति शुद्ध चेतनि दरशाया ॥५॥

ज्ञान अनन्तानन्त जैसे के तैसे रहिहैं।
अविनाशी अविकार परम पदधाम सुख लहिहैं॥
ऐसी भावना भाय ऐसे जो कारज करै हैं।
सो ऐसे ही होय दुष्ट कर्मों को हरै हैं॥६॥

जिनके उर विश्वास वचन जिन शासन नाहीं।
ते भोगातुर होय सहैं दुख नरकों माहीं॥
सुख दुख पूर्व विपाक अरे मत कल्पै जीया।
कठिन कठिन कर मित्र जन्म मानुष का लीया॥७॥

ताहि वृथा मत खोय जोय आपा—पर भाई।
गये न मिलसी फेर समुद्र में डूबी राई॥
भला नर्क का वास सहित जो सम्यक पाता।
बुरे बने जो देव नृपति मिथ्या मदमाता॥८॥

ना खर्चे धन होय नहीं काहू से लरना।
नहीं दीनता होय नहीं घर का परिहरना॥
सम्यक सहज स्वभाव आपका अनुभव करना।
या विन जप तप व्यर्थ कष्टके माहीं परना॥९॥

कोड़ बात की बात अरे बुधजन उर धरना।
मन वच तन शुचि होय गहो जिनवृष का शरणा॥
ठारहसौ पंचास अधिक नव सम्वत जानो।
तीज शुक्ल वैशाख ढाल छह शुभ उपजानो॥१०॥

सामायिक पाठ भाषा

(पं० महाचन्द जी कृत)

१—प्रतिक्रमण कर्म

काल अनन्त भ्रम्यो जगमें सहिये दुख भारी।
जन्ममरण नित किये पापको है अधिकारी॥
कोड़ि भवांतरमांहि मिलन दुर्लभ सामायिक।
धन्य आज मैं भयो योग मिलियो सुखदायक॥१॥

हे सर्वज्ञ जिनेश किये जे पाप जु मैं अब।
ते सब मनवचकाय योग की गुप्ति बिना लभ॥
आप समीप हजूरमांहि मैं खड़ो खड़ो सब।
दोष कहूं सो सुनो करो नठ दुःख देहि जब॥२॥

क्रोध मान मद लोभ मोह मायावशि प्रानी।
दुःख सहित जे किये दया तिनकी नहिं आनी॥
विना प्रयोजन एकेन्द्रिय बि ति चउ पंचेन्द्रिय।
आप प्रसादहि मिटै दोष जो लग्यो मोहि जिय॥३॥

आपस में इक ठौर थापि करि जे दुख दीने।
पेलि दिये पगतलें दाबि करि प्राण हरीने॥
आप जगत के जीव जिते तिन सब के नायक।
अरज करूं मैं सुनो दोष मेटो दुखदायक॥४॥

अञ्जन आदिक चोर महा घनघोर पापमय।
तिनके जे अपराध भये ते क्षिमा क्षिमा किय॥
मेरे जे अब दोष भये ते क्षमो दयानिधि।
यह पडिकोणो कियो आदि षट्कर्ममांहि विधि॥५॥

श्रीसुपार्श्व कृत पास नाश भव जास शुद्ध कर ।
श्रीचन्द्रप्रभ चन्द्रकान्ति सम देह कान्ति धर ॥
पुष्पदन्त दमि दोषकोश भविपोष रोषहर ।
शीतल शीतल करन हरन भवताप दोषकर ॥१७॥

श्रेयरूप जिन श्रेय ध्येय नित सेय भव्यजन ।
वासुपूज्य शतपूज्य वासवादिक भवभय हन ॥
विमल विमल मति देन अंतगत हैं अनन्त जिन ।
धर्म शर्म शिवकरन शांतिजिन शांतिविधायिन ॥१८॥

कुन्थु कुन्थु मुख जीवपाल अरनाथ जाल हर ।
मल्लि मल्लसम मोहमल्ल मारण प्रचार धर ॥
मुनिसुव्रत व्रतकरण नमत सुरसंघहि नमि जिन ।
नेमिनाथ जिन नेमि धर्मरथमाहिं ज्ञानधन ॥१९॥

पार्श्वनाथ जिन पार्श्व उपलसम मोक्ष रमापति ।
वर्द्धमान जिन नमूं वमूं भव-दुःख कर्मकृत ॥
या विध में जिन संघरूप चउवीस संख्यधर ।
स्तऊं नमूं हूँ वार वार बन्दौं शिवसुखकर ॥२०॥

५-वन्दना कर्म

वन्दूं मैं जिनवीर धीर महावीर सुसन्मति ।
वर्द्धमान अतिवीर वदिहौं मनवचतनकृत ॥
त्रिशला तनुज महेश धीश विद्यापति वन्दूं ।
वन्दूं नितप्रति कनकरूप तनु पाप निकंदूं ॥२१॥

सिद्धारथनृपनन्द द्वंद दुखदोष मिटावन ।
दुरित दवानल ज्वलितज्वाल जगजीवउधारन ॥

कुण्डलपुरकरि जन्म जगत जिय आनन्दकारन ।
वर्ष बहत्तरि आयु पाय सब ही दुख टारन ।२२॥

सप्तहस्त तनु तुङ्ग भंगकृत जन्म मरण भय ।
बालब्रह्ममय ज्ञेय हेय आदेय ज्ञानमय ॥
दे उपदेश उधारि तारि भवसिंधु जीवघन ।
आप बसे शिवमाहिं ताहि वंदों मनवचतन ॥२३॥

जाके वन्दनथकी दोष दुख दूरहि जावैं ।
जाके वन्दनथकी मुक्तितिय सन्मुख आवै ॥
जाके वन्दनथकी वंद्य होवैं सुरगन के ।
ऐसे वीर जिनेश वंदिहूँ क्रमयुग तिनके ॥२४॥

सामायिक षट्कर्म माहिं वंदन यह पञ्चम ।
वन्दे वीर जिनेन्द्र इन्द्र शत वंद्य वंद्य मम ॥
जन्म मरण भय हरो करो अघ शांति शांति मय ।
मैं अघकोश सुपोष दोष को दोष विनाशय ॥२५॥

६—कायोत्सर्ग कर्म

कायोत्सर्गविधान करूं अन्तिम सुखदाई ।
काय त्यजन मम होय काय सबकौं दुखदाई ।
पूरब दक्षिण नमूं दिशा पश्चिम उत्तर मैं ।
जिनगृह वंदन करूं हरूं भव पाप-तिमिर मैं ॥२६॥

शिरोनती मैं करूं नमूं मस्तक कर धरिकैं ।
आवर्तादिक क्रिया करूं मनवच मद हरिकैं ॥
तीन लोक जिनभवनमाहिं जिन हैं जु अकृत्रिम ।
कृत्रिम हैं द्वय अर्द्धद्वीप माहीं वन्दौं जिम ॥२७॥

[illegible] ।
[illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥२८॥

[illegible] ।
[illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥२९॥

जे भवि आतम काज करण उद्यम के धारी ।
ते सब काज विहाय करो सामायिक सारी ॥
राग दोष मद मोह क्रोध लोभादिक जे सब ।
बुध महाचन्द्र विलाय जाय तातें कीजो अब ॥३०॥

卐

सामायिक पाठ (भाषा)

[स्व॰ ब्र॰ शीतलप्रसाद जी कृत]

नित देव ! मेरी आत्मा, धारण करे इस नेम को ।
मैत्री करे सब प्राणियों से, गुणिजनों से प्रेम को ॥
उन पर दया करती रहे, जो दुःख-ग्राह-गृहीत हैं ।
उनसे उदासी भी रहे, जो धर्म के विपरीत हैं ॥१॥

करके कृपा कुछ शक्ति ऐसी, दीजिये मुझ में प्रभो ।
तलवार को ज्यों म्यान से, करते अलग हैं हे विभो ॥
गतदोष आत्मा शक्तिशाली, है मिली मम अंग से ।
उसको विलग उस भांति, करने के लिए ऋजु ढङ्ग से ॥२॥

हे नाथ मेरे चित्त में, समता सदा भरपूर हो।
सम्पूर्ण ममता की कुमति, मेरे हृदय से दूर हो॥
वन में, भवन में, दुःख में, सुख में, नहीं कुछ भेद हो।
अरि-मित्र में, मिलने बिछुड़ने में न हर्ष न खेद हो॥३॥
अतिशय घनी तम-राशि को, दीपक हटाते हैं यथा।
दोनों कमल-पद आपके, अज्ञान-तम हरते तथा॥
प्रतिबिम्बसम थिररूप वे, मेरे हृदय में लीन हों।
मुनिनाथ! कीलित-तुल्य वे उर पर सदा आसीन हों॥४॥
यदि एक इन्द्रिय आदि देही, घूमते फिरते मही।
जिनदेव! मेरी भूल से, पीड़ित हुए होवें कहीं॥
टुकड़े हुए हों, मल गये हों, चोट खाये हों कभी।
तो नाथ! वे दुष्टाचरण, मेरे बनें झूठे सभी॥५॥
सन्मुक्ति के सन्मार्ग से प्रतिकूल पथ मैंने लिया।
पंचेन्द्रियों चारों कषायों में स्वमन मैंने दिया॥
इस हेतु शुद्ध चारित्र का जो, लोप मुझ से हो गया।
दुष्कर्म वह मिथ्यात्व को, हो प्राप्त प्रभु! करिए दया॥६॥
चारों कषायों से वचन, मन, काय से जो पाप है।
मुझसे हुआ, हे नाथ! वह, कारण हुआ भव-ताप है॥
अब मारता हूँ मैं उसे, आलोचना-निन्दादि से।
ज्यों सकल विष को वैद्यवर, है मारता मन्त्रादि से॥७
जिनदेव! शुद्ध चरित्र का, मुझसे अतिक्रम जो हुआ।
अज्ञान और प्रमाद से, व्रत का व्यतिक्रम जो हुआ॥
अतिचार और अनाचरण, जो जो हुए मुझसे प्रभो।
सब की मलिनता मेटने को, प्रतिक्रमण करता विभो॥८॥

[illegible]

[illegible] नहीं ।

[illegible] नहीं ॥

[illegible] ।

[illegible] ॥२१॥

[illegible] नहीं ।

[illegible] नहीं ॥

[illegible] नहीं ।

आसन [illegible] लिये, है आत्मा [illegible] वही ।२२॥

हे भद्र ! आसन, लोक–पूजा, संघ की संगति तथा ।

ये सब समाधी के न साधन, वास्तविक में हैं वृथा ॥

सम्पूर्ण बाहर–वासना को इसलिये तू छोड़ दे ।

अध्यात्म में तू हर घड़ी, होकर निरत रति जोड़ दे ॥२३॥

जो बाहरी है वस्तुयें, वे है नहीं मेरी कहीं ।

उस भांति हो सकता कहीं उनका कभी मैं भी नहीं ॥

यों समझ बाह्याडम्बरों को, छोड़ निश्चित रूप से ।

हे भद्र ! हो जो स्वस्थ तू, बच जायगा भवकूप से ॥२४॥

निज को निजात्मा–मध्य में ही, सम्यगवलोकन करे ।

तू दर्शन–प्रज्ञानमय है, शुद्ध से भी है परे ॥

एकाग्र जिसका चित्त है, तू सत्य इसको मानना ।

चाहे कहीं भी हो समाधिप्राप्त उसको जानना ॥२५॥

मेरी अकेली आत्मा, परिवर्तनों से हीन है ।

अतिशय विनिर्मल है सदा, सद्ज्ञान में ही लीन है ॥

जो अन्य सब है वस्तुयें, वे ऊपरी ही हैं सभी ।

निज कर्म से उत्पन्न है, अविनाशित क्यों हो कभी ॥२६॥

है एकता जब देह के भी, साथ में जिसकी नहीं ।
पुत्रादिकों के साथ उसका, ऐक्य फिर क्यों हो कहीं ॥
जब अंग भर से मनुज के, चमड़ा अलग हो जायगा ।
तो रोंगटों का छिद्रगण, कैसे नहीं खो जायगा ॥२७॥
संसार रूपी गहन में है, जीव बहु दुख भोगता ।
वह बाहरी सब वस्तुओं के, साथ कर संयोगता ॥
यदि मुक्ति की है चाह तो, फिर जीवगण ! सुन लीजिये ।
मन से वचन से काय से, उसको अलग कर दीजिये ॥२८॥
देही विकल्पित जाल को, तू दूर कर दे शीघ्र ही ।
संसार वन में डालने का, मुख्य कारण है यही ॥
तू सर्वदा सबसे अलग, निज आत्मा को देखना ।
परमात्मा के तत्व में, तू लीन निज को देखना ॥२९॥
पहले समय में आत्मा ने, कर्म हैं जैसे किए ।
वैसे शुभाशुभ फल यहां पर सांप्रतिक उसने लिये ॥
यदि दूसरे के कर्म का फल, जीव को हो जाय तो ।
हे जीवगण ! फिर सफलता निज कर्म की खो जाय तो ॥३०॥
अपने उपार्जित कर्म-फल को, जीव पाते हैं सभी ।
उसके सिवा कोई किसी को, कुछ नहीं देता कभी ॥
ऐसा समझना चाहिये, एकाग्र मन होकर सदा ।
दाता अपर है भोग का, इस बुद्धि को खोकर सदा ॥३१॥
सबसे अलग परमात्मा है, अमितगति से वन्द्य है ।
हे जीवगण ! वह सर्वदा, सब भांति ही अनवद्य है ॥
मन से उसी परमात्मा को, ध्यान में जो लायगा ।
वह श्रेष्ठ लक्ष्मी के निकेतन, मुक्ति-पद को पायगा ॥३२॥
पढ़कर इन द्वात्रिंश पद्य को, लखता जो परमात्मवन्द्य को ।
वह अनन्यमन हो जाता है, मोक्ष-निकेतन को पाता है ॥३३॥

महावीराष्टक-स्तोत्र

(पं० भागचन्द जी [illegible] कृत)

यदीये चैतन्ये मुकुर इव भावाश्चिदचितः ।
समं भान्ति ध्रौव्यव्ययजनिलसन्तोऽन्तरहिताः ॥
जगत्साक्षी मार्गप्रकटनपरो भानुरिव यो ।
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥१॥

आताम्रं यच्चक्षुः कमलयुगलं स्पन्दरहितं ।
जनान्कोपापायं प्रकटयति वाभ्यन्तरमपि ॥
स्फुटं मूर्तिर्यस्य प्रशमितमयी वातिविमला ।
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः ॥२॥

नमन्नाकेन्द्राली मुकुटमणिभाजालजटिलं ।
लसत्पादांभोजद्वयमिह यदीयं तनुभृताम् ॥
भवज्ज्वालाशान्त्यै प्रभवति जलं वा स्मृतमपि ।
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥३॥

यदर्च्चाभावेन प्रमुदितमना दर्दुर इह ।
क्षणादासीत्स्वर्गी गुणगणसमृद्धः सुखनिधिः ॥
लभंते सद्भक्ताः शिवसुखसमाजं किमु तदा ।
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥४॥

कनत्स्वर्णाभासोऽप्यपगततनुर्ज्ञाननिवहो ।
विचित्रात्माप्येको नृपतिवरसिद्धार्थतनयः ॥
अजन्मापि श्रीमान् विगतभवरागोद्भुतगतिर् ।
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥५॥

यदीया वाग्गंगा विविधनयकल्लोलविमला।
बृहज्ज्ञानांभोभिर्जगति जनतां या स्नपयति॥
इदानीमप्येषा बुधजनमरालैः परिचिता।
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः)॥६॥

अनिर्वारोद्रेकस्त्रिभुवनजयी कामसुभटः।
कुमारावस्थायामपि निजबलाद्येन विजितः॥
स्फुरन्नित्यानंदप्रशमपदराज्याय स जिनः।
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः)॥७॥

महामोहातंकप्रशमनपराकस्मिकभिषग्।
निरापेक्षो बंधुर्विदितमहिमा मंगलकरः॥
शरण्यः साधूनां भवभयभृतामुत्तमगुणो।
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः)॥८॥

× × ×

महावीराष्टकं स्तोत्रं भक्त्या भागेन्दुना कृतम्।
यः पठेच्छृणुयाच्चापि स याति परमां गतिम्।

卐

महावीराष्टक-भाषा

[पं० [illegible]]

जिन्हों की प्रज्ञा में, मुकुरसम चैतन्य जड़ भी।
स्वतः नाशोत्पत्ती,-ध्रुव झलकते साथ सब ही॥
जगद्ज्ञाता मार्ग, प्रकट करते सूर्यसम जो।
महावीरस्वामी, दरश हमको दें प्रकट वे॥१॥

महामोहव्याधी, हरणकरता वैद्य सहज ।
विना इच्छा बंधू, प्रथितजगकल्याण करता ॥
सहारा भव्यों को सकल जगमें उत्तम गुणी ।
महावीरस्वामी, दरश हमको दें प्रकट वे ॥८॥

× × ×

संस्कृत वीराष्टक रच्यो, भागचन्द रुचिवान ।
नग भाषा अनुवाद यह, पढ़ि पावैं निर्वान ॥

卐

भक्तामर-स्तोत्र

भक्तामरप्रणतमौलिमणिप्रभाणामुद्योतकं दलितपापतमोवितानम् ।
सम्यक् प्रणम्य जिनपादयुगं युगादावालम्बनं भवजले पततां जनानाम् ॥१॥

यः संस्तुतः सकलवाङ्मयतत्त्वबोधादुद्भूतबुद्धिपटुभिः सुरलोकनाथैः ।
स्तोत्रैर्जगत्त्रितयचित्तहरैरुदारैः, स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम् ॥२॥

बुद्ध्या विनापि विबुधार्चितपादपीठ, स्तोतुं समुद्यतमतिर्विगतत्रपोऽहम् ।
बालं विहाय जलसंस्थितमिन्दुबिम्ब,-मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम् ॥३॥

वक्तुं गुणान् गुणसमुद्र शशाङ्ककान्तान्, कस्ते क्षमः सुरगुरुप्रतिमोऽपि बुद्ध्या ।
कल्पान्तकालपवनोद्धतनक्रचक्रं, को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम् ॥४॥

सोऽहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश, कर्तुं स्तवं विगतशक्तिरपि प्रवृत्तः ।
प्रीत्यात्मवीर्यमविचार्य मृगो मृगेन्द्रं, नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थम् ॥५॥

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम, त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम् ।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति, तच्चाम्रचारुकलिकानिकरैकहेतुः ॥६॥

त्वत्संस्तवेन भवसन्ततिसन्निबद्धं, पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीरभाजाम् ।
आक्रान्तलोकमलिनीलमशेषमाशु, सूर्यांशुभिन्नमिव शार्वरमन्धकारम् ॥७॥

मत्वेति नाथ तव संस्तवनं मयेद,-मारभ्यते तनुधियापि तव प्रभावात् ।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनीदलेषु, मुक्ताफलद्युतिमुपैति ननूदबिन्दुः ॥८॥

इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र, धर्मोपदेशनविधौ न तथा परस्य ।
यादृक्प्रभा दिनकृत प्रहतान्धकारा, तादृक्कुतो ग्रहगणस्य विकाशिनोऽपि ॥३७॥

श्च्योतन्मदाविलविलोलकपोलमूलमत्तभ्रमद्--भ्रमरनादविवृद्धकोपम् ।
ऐरावताभमिभमुद्धतमापतन्त, दृष्ट्वा भय भवति नो भवदाश्रितानाम् ॥३८॥

भिन्नेभकुम्भगलदुज्ज्वलशोणिताक्तमुक्ताफलप्रकरभूपितभूमिभाग ।
वद्धक्रम क्रमगत हरिणाधिपोऽपि, नाक्रामति क्रमयुगाचलसश्रित ते ॥३९॥

कल्पान्तकालपवनोद्धतवह्निकल्प, दावानल ज्वलितमुज्ज्वलमुत्स्फुलिङ्गम् ।
विश्व जिघत्सुमिव सम्मुखमापतन्त, त्वन्नामकीर्तनजल शमयत्यशेषम् ॥४०॥

रक्तेक्षण समदकोकिलकण्ठनील, क्रोधोद्धत फणिनमुत्फणमापतन्तम् ।
आक्रामति क्रमयुगेन निरस्तशङ्कस्त्वन्नामनागदमनी हृदि यस्य पुस ॥४१॥

वल्गत्तुरङ्गगजगर्जितभीमनादमाजौ वल वलवतामपि भूप‌तीनाम् ।
उद्यद्दिवाकरमयूखशिखापविद्ध, त्वत्कीर्त्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति ॥४२॥

कुन्ताग्रभिन्नगजशोणितवारिवाहवेगावतारतरणातुरयोधभीमे ।
युद्धे जय विजितदुर्जयजेयपक्षास्त्वत्पादपङ्कजवनाश्रयिणो लभन्ते ॥४३॥

अम्भोनिधौ क्षुभितभीपणनक्रचक्रपाठीनपीठभयदोल्वणवाडवाग्नौ ।
रङ्गत्तरङ्गशिखरस्थितयानपात्रास्त्रास विहाय भवत स्मरणाद् वृजन्ति ॥४४॥

उद्भूतभीपणजलोदरभारभुग्ना, शोच्या दशामुपगताश्च्युतजीविताशा. ।
त्वत्पादपङ्कजरजोमृतदिग्धदेहा, मर्त्या भवन्ति मकरध्वजतुल्यरूपा ॥४५॥

आपादकण्ठमुरुशृङ्खलवेष्टिताङ्गा गाढ वृहन्निगडकोटिनिघृष्टजघा ।
त्वन्नाममन्त्रमनिश मनुजा स्मरन्त, सद्य स्वय विगतबन्धभया भवन्ति ॥४६॥

मत्तद्विपेन्द्रमृगराजदवानलाहि, सग्रामवारिधिमहोदरबन्धनोत्थम् ।
तस्याशु नाशमुपयाति भय भियेव, यस्तावक स्तवमिम मतिमानधीते ॥४७॥

स्तोत्रस्रज तव जिनेन्द्र गुणैर्निबद्धा, भक्त्या मया रुचिरवर्णविचित्रपुष्पाम् ।
धत्ते जनो य इह कण्ठगतामजस्र, त मानतुङ्गमवशा समुपैति लक्ष्मी ॥४८॥

॥ इति श्री मानतुङ्गाचार्यविरचित आदिनाथस्तोत्र समाप्तम् ॥

卐

विषापहार स्तोत्र (भाषा)

दोहा—आतम लीन अनन्त गुण, स्वामी ऋषभ जिनेन्द्र ।
नित प्रति वन्दत चरण युग, सुर नागेन्द्र नरेन्द्र ॥१॥

—(चौपाई)—

विश्वनाथ विमल गुण ईश, विहरमान वन्दौं जिन बीस ।
गणधर गौतम शारद माय, वर दीजे मोहि बुद्धि सहाय ॥२॥
सिद्ध साधु सतगुरु आधार, करूँ कवित्त आतम उपगार ।
विषापहार स्तवन उचार, सुनत औषधी अमृतसार ॥३॥
मेरा मंत्र तुम्हारा नाम, तुम ही गारुड़ गरुड़ समान ।
तुम सम वैद्य नहीं संसार, तुम स्याने तिहुँ लोक मझार ॥४॥
तुम विषहरण करन जग सन्त, नमो नमो तुम देव अनन्त ।
तुम गुण महिमा अगम अपार, सुरगुरु शेष लहैं नहिं पार ॥५॥
तुम परमातम परमानंद, कल्पवृक्ष वह सुख के कन्द ।
मुदित मेरु नयमण्डित धीर, विद्या-सागर गुणगम्भीर ॥६॥
तुम अघमथन महा बरवीर, संकट विकट भयभंजन भीर ।
तुम जगतारन तुम जगदीश, पतित उधारन विरदे दास ॥७॥
तुम गुणमणि चिन्तामणि राशि, निर्वैरी निरदूषण निवास ।
विघ्नहरण तुम नाम अनूप, मंत्र यंत्र तुम हो सनिधान ॥८॥
जैसे वज्र पर्वत परिहार, त्यों तुम नाम जु विघ्नप्रहार ।
नागदमन तुम नाम सहाय, विषहर विघननाशक उनमाद ॥९॥
तुम सुमरण चिते मनमांहि, विष बीते अमृत हो जांहि ।
नाम सुधारस वर्षे जहां, पाप-पंकमल रहै न तहां ॥१०॥
ज्यों पारस के परसै लोह, निज गुण तज कंचन सम होहि ।

ज्यों तुम सुमरण साधे सूंच, नीच जो पावे पदवी ऊंच ॥११॥
तुमहि नाम औषधि अनुकूल, महा मंत्र सर जीवन मूल ।
मूरख भर्म न जाने भेव, कर्म कलंक दहन तुम देव ॥१२॥
तुम ही नाम गारुड़ गह गहै, काल भुजंगम कैसे रहै ।
तुम्ही धनन्तर हो जिनराय, मरण न पावे को तुम ठाय ॥१३॥
तुम सूरज उदकाघट जास, संशय शीत न व्यापे तास ।
जीवे दादुर वर्षे तोय, सुन वाणी सर जीवन होय ॥१४॥
तुम विन कौन करै मुझ पार, तुम कर्त्ता हर्त्ता किरपाल ॥१५॥
शरण आयो तुम्हरी जिनराज, अब मो काज सुधारो आज ।
मेरे यह धन पूंजी पूत, साह कहै घर राखो सूत ॥१६॥
करौ वीनती वारंवार, तुम बिन कर्म करै को क्षार ॥१७॥
विग्रह दुःख विपत्ति वियोग, और जु घोर जलंधर रोग ।
चरण कमल रज टुक तन लाय, कुष्ट व्याधि दीरघ मिट जाय ॥१८॥
मैं अनाथ तुम त्रिभुवननाथ, मात पिता तुम सज्जन साथ ।
तुम सा दाता कोई न आन, और कहां जाऊं भगवान ॥१९॥
प्रभुजी पतित उधारन आह, बांह गहे की लाज निवाह ।
जहां देखों तहां तूही आय, घट घट ज्योति रही ठहराय ॥२०॥
घाट सुघाट विषम भय जहां, तुम बिन कौन सहाई तहां ।
विकट व्याधि व्यंतर जल दाह, नाम लेत क्षण मांहि विलाह ॥२१॥
आचार्य मानतुंग अवमान, संकट सुमिरो नाम निधान ।
भक्तामर की भक्ति सहाय, प्रण राखें प्रगटे तिस ठाय ।२२॥
चुगल एक नृप विग्रह ठयो, वादिराज नृप देखन गयो ।
एकीभाव कियो निस्संदेह, कुष्ट गयो कंचन सम देह ॥२३॥
कल्याणमन्दिर कुमुदचन्द ठयो, राजा विक्रम विस्मय भयो ।
सेवक जान तुम करी सहाय, पारसनाथ प्रगटे तिस ठाय ।२४।

गई व्याधि विमल मति लही, तहाँ पुनि सन्निधि तुम ही कही ।
भयसुदत्त श्रीपाल नरेश, सागर जल संकट सुविशेष ।।२५।।
तहां पुनि तुम ही भये सहाय, आनन्द से घर पहुँचे जाय ।
सभा दुःशासन पकड़ो चीर, द्रुपदी प्रण राखो कर धीर ।।२६।।
सीता लक्ष्मण दीनो साज, रावण जीत विभीषण राज ।
सेठ सुदर्शन साहस दियो, शूली से सिंहासन कियो ।।२७।।
वारिषेण नृप धरियो ध्यान, तत्क्षण उपजो केवल ज्ञान ।
सिंह सर्पादिक जीव अनेक, जिन सुमिरे तिन राखी टेक ।।२८।।
ऐसी कीरति जिनकी कहैं, साह कहे शरणागत रहैं ।
इस अवसर जीवे यह बाल, शुद्ध सन्देह मिटे ततकाल ।२९।।
बन्दी छोड़ विरद महाराज, अपना विरद निवाहो आज ।
और आलंबन मेरे नाहिं, मैं निश्चय कीनो मन माहिं ।३०।।
चरण कमल छोड़ों ना सेव, मेरे तो तुम सतगुरु देव
तुम ही सूरज तुम ही चन्द्र, मिथ्या मोह निकन्दन चन्द ।।३१।।
धर्मचक्र तुम धारण धीर, विपहर चक्र विदारन पीर ।
चोर अग्नि जल भूत पिशाच, जल जन्तुम अटवी उदवास ।३२।।
दुर दुशमन राजा वश होय, तुम प्रसाद गर्जे नहिं कोय ।
हय गय भुज सबल सामन्त, सिंह शार्दूल महा भयवन्त ।।३३।।
दृढ़ बंधन विग्रह विकराल, तुम सुमरत छूटें तत्काल ।
पावन पनहीं नमक न नार, नादो तुम शाना गजनार ।।३४।।
एक उधार धरो तुम गाज, तुम प्रभु कहे गरीब-निवाज ।
दासों ने देवा सब करो, भरी साख तुम शीतल करो ।३५।।
इसी कहाँ तुम जिनराज, कीजो दुष्कर सकल निवार ।
तुम अनन्त अनघ को ज्ञान, कहूं मन प्रभुनां करी ध्यान ।।३६।।

आगम पन्थ न सूझे मोहि, तुम्हरे चरण बिना किम होहि ।
भये प्रसन्न तुम साहस कियो, दयावन्त तब दर्शन दियो ॥३७॥
साह पुत्र जब चेतन भयो, हँसत हँसत वह घर तब गयो ।
धन्य दर्शन पायो भगवन्त, आज अङ्ग मुख नयन लसन्त ॥३८॥
प्रभु के चरण कमल में नयो, जन्म कृतारथ मेरो भयो ।
कर युग जोड़ नवाऊं शीश, मुझ अपराध क्षमो जगदीश ॥३९॥
सत्रह सौ पन्द्रह शुभ थान, नारनौल तिथि चौदस जान ।
पढ़े सुने तहां परमानन्द, कल्पवृक्ष महा सुख कन्द ॥४०॥
अष्ट सिद्धि नव निधि सो लहै, अचलकीर्ति आचार्यसु कहै ।
याको पढ़ो सुनो सब कोय, मनवांछित फल निश्चय होय ॥४१॥

दोहा—भयभञ्जन रजन जुगत, विषापहार अभिराम ।
संशय तज सुमिरो सदा, श्रीजिनवर को नाम ॥४२॥

O

निर्वाणकाण्ड (गाथा)

अट्ठावयम्मि उसहो चंपाए वासुपुज्ज जिणणाहो ।
उज्जंते णेमिजिणो पावाए णिव्वुदो महावीरो ॥१॥
वीसं तु जिणवरिंदा अमरा सुरवंदिदा धुवकिलेसा ।
सम्मेदे गिरिसिहरे णिव्वाण गया णमो तेसिं ॥२॥
वरदत्तो य वरंगो सायरदत्तो य तारवरणयरे ।
आहुट्ठयकोडीओ णिव्वाण गया णमो तेसिं ॥३॥
णेमिसामि पज्जुण्णो संबुकुमारो तहेव अणिरुद्धो ।
बाहत्तरिकोडीओ उज्जंते सत्तसया सिद्धा ॥४॥

रामसुवा बेण्णिजणा लाडणरिंदाण पंचकोडीओ ।
पावागिरिवरसिहरे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥५॥
पंडुसुआ तिण्णिजणा दविडणरिंदाण अट्ठकोडीओ ।
सेत्तुंजयगिरिसिहरे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥६॥
संते जे बलभद्दा जदुवणरिंदाण अट्ठकोडीओ ।
गजपंथे गिरिसिहरे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥७॥
रामहणू सुग्गीओ गवयगवाक्खो य णीलमहणीलो ।
णवणवदीकोडीओ तुंगीगिरिणिव्वुदे वंदे ॥८॥
णंगाणंगकुमारा कोडीपंचद्धमुणिवरा सहिया ।
सुवणागिरिवरसिहरे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥९॥
दहमुहरायस्स सुवा कोडीपंचद्धमुणिवरा सहिया ।
रेवाउहयतडग्गे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१०॥
रेवाणइए तीरे पच्छिमभायम्मि सिद्धवरकूडे ।
दो चक्की दह कप्पे आहुट्ठयकोडि णिव्वुदे वंदे ॥११॥
वडवाणीवरणयरे दक्खिणभायम्मि चूलगिरिसिहरे ।
इंदजीदकुंभयणो णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१२॥
पावागिरिवरसिहरे सुवण्णभद्दाइ मुणिवरा चउरो ।
चलणाणईतडग्गे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१३॥
फलहोडीवरगामे पच्छिमभायम्मि दोणगिरिसिहरे ।
गुरुदत्तादिमुणिंदा णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१४॥
णायकुमारमुणिंदो बालि महाबालि चेव अज्झेया ।
अट्ठावयगिरिसिहरे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१५॥
अच्चलपुरवरणयरे ईसाणे भाए मेढगिरिसिहरे ।
आहुट्ठयकोडीओ णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१६॥
वंसत्थवरणियरे पच्छिमभायम्मि कुंथुगिरि सिहरे ।

कुलदेसभूसणमुणी णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१७॥

जसरहरायस्स सुआ पंचसयाइं कलिंगदेसम्मि ।
कोडिसिला कोडिमुणी णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१८॥

पासस्स समवसरणे सहिया वरदत्तमुणिवरा पंच ।
रेसंदोगिरिसिहरे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१९॥

—निर्वाणकाण्ड (भाषा)—

[कविवर भैया भगवतीदास जी रचित]

दोहा – वीतराग वंदौ सदा, भावसहित सिर नाय ।
कहूँ कांड निर्वाण की, भाषा सुगम बनाय ॥

–: (चौपाई) :–

अष्टापद आदीसुर स्वामि, वासुपूज्य चंपापुरि नामि ।
नेमिनाथस्वामी गिरनार, वंदौ भाव भगति उर धार ॥१॥

चरम तीर्थंकर चरम शरीर, पावापुर स्वामी महावीर ।
शिखरसम्मेद जिनेसुर वीस, भावसहित वंदौं जगदीश ॥२॥

वरदतराय रु इंद मुनिंद, सागरदत्त आदि गुणवृंद ।
नगर तारवर मुनि उठकोड़ि, वंदो भावसहित कर जोड़ि ॥३॥

श्रीगिरनार शिखर विख्यात, कोडि वहत्तर अरु सौ सात ।
संबु प्रद्युम्नकुमार द्वै भाय, अनिरुद्ध आदि नमूं तसु पाय ॥४॥

रामचन्द्र के सुत द्वै वीर, लाडनरिंद आदि गुणधीर ।
पांच कोडि मुनि मुक्तिमझार, पावागिरि वंदौं निरधार ॥५॥

पांडव तीन द्रविड राजान, आठ कोड़ि मुनि मुकति पयान ।
श्रीशत्रुंजय गिरि के सीस, भावसहित वंदौं निश दीस ॥६॥
जे बलभद्र मुकति में गये, आठ कोड़ि मुनि औरहु भये ।
श्रीगजपंथशिखर सुविशाल, तिनके चरण नमूं तिहुं काल ॥७॥
राम हनू सुग्रीव सुडील, गवगवाख्य नील महानील ।
कोटि निन्यानवे मुक्तिपयान, तुंगीगिरि वंदौं धरि ध्यान ॥८॥
नंग अनंग कुमार सुजान, पंचकोड़ि अरु अर्धप्रमान ।
मुक्ति गये सोनागिरसीस, ते वंदौं त्रिभुवनपति ईस ॥९॥
रावण के सुत आदि कुमार, मुक्ति गये रेवातट सार ।
कोड़ि पंच अरु लाख पचास, ते वंदौं धरि परम हुलास ॥१०॥
रेवानदी सिद्धवरकूट, पश्चिमदिशा देह जहँ छूट ।
द्वै चक्री दश कामकुमार, ऊठकोड़ि वंदौं भवपार ॥११॥
बड़वानी बड़नयर सुचंग, दक्षिण दिश गिरिचूल उतंग ।
इन्द्रजीत अरु कुम्भ जु कर्ण, ते वंदौं भवसागरतर्ण ॥१२॥
सुवरणभद्र आदि मुनि चार, पावागिरिवर शिखर मझार ।
चेलना नदी तीर के पास, मुक्ति गये वंदौं नित तास ॥१३॥
फलहोडी बड़गाम अनूप, पश्चिमदिशा द्रोणगिरि रूप ।
गुरुदत्तादि मुनीसुर जहां, मुक्ति गये वंदौं नित तहां ॥१४॥
बालि महाबालि मुनि दोय, नागकुमार मिले त्रय होय ।
श्रीअष्टापद मुक्तिमझार, ते वंदौं नित सुरत संभार ॥१५॥
अचलापुर की दिश ईसान, तहां मेढ़गिरि नाम प्रधान ।
साढ़े तीन कोड़ि मुनिराय, तिनके चरण नमूं चित लाय ॥१६॥
वंशस्थल वनके ढिग होय, पश्चिमदिशा कुंथगिरि सोय ।
कुलभूषण देशभूषण नाम, तिनके चरणनि करूं प्रणाम ॥१७॥

जसरथ राजा के सुत कहे, देश कलिंग पाँचसौ लहे।
कोटिशिला मुनि कोटिप्रमान, वंदन करूं जोर जुग पान ॥१८॥
समवसरण श्रीपार्श्वजिनंद, रेसंदीगिरि नयनानन्द।
वरदत्तादि पंच ऋषिराज, ते वंदों नित धरम जिहाज ॥१९॥
तीन लोक के तीरथ जहां, नितप्रति वंदन कीजे तहां।
मन वच काय सहित सिर नाय, वंदन करहिं भविक गुण गाय ॥२०॥
संवत सतरहसौ इकताल, आश्विन सुदि दशमी सुविशाल।
'भैया' वंदन करहिं त्रिकाल, जय निर्वाणकांड गुणमाल ॥२१॥

आलोचना-पाठ

(दोहा)

वंदों पाँचों परम-गुरु, चौबीसों जिनराज।
करूँ शुद्ध आलोचना, शुद्धिकरन के काज ॥१॥

(सखी छन्द)

सुनिये जिन अरज हमारी, हम दोष किये अति भारी।
तिनकी अब निर्वृत्ति काज, तुम सरन लही जिनराज ॥
इक वे ते चउ इन्द्री वा, मनरहित सहित जे जीवा।
तिनकी नहिं करुणा धारी, निरदइ ह्वै घात विचारी ॥
समरंभ समारंभ आरंभ, मन वच तन कीने प्रारंभ।
कृत कारित मोदन करिकैं, क्रोधादि चतुष्टय धरिकैं ॥
शतआठ जु इमि भेदननैं, अघ कीने परछेदननैं।
तिनकी कहुं कोलों कहानी, तुम जानत केवलज्ञानी ॥

विपरीत एकांत विनयके संशय अज्ञान कुनयके ।
वश होय, घोर अघ कीने, वचतैं नहिं जात कहीने ॥
कुगुरुन की सेवा कीनी, केवल अदयाकरि भीनी ।
याविधि मिथ्यात्व भ्रमायो, चहुंगति मधि दोष उपायो ॥
हिंसा पुनि झूठ जु चोरी, पर—वनितासों दृग जोरी ।
आरंभ परिग्रह भीनो, पन पाप जु या विधि कीनो ॥
सपरस रसना घ्राननको दृग कान विषय—सेवनको ।
बहु करम किये मनमाने, कछु न्याय अन्याय न जाने ॥
फल पंच उदंबर खाये, मधु मांस मद्य चित चाये ।
नहिं अष्ट मूलगुण धारी, विसनन सेये दुखकारी ॥
दुइवीस अभख जिन गाये, सो भी निस दिन भुंजाये ।
कछु भेदाभेद न पायो, ज्यों त्यों करि उदर भरायो ॥
अनंतानुबंधी जु जानो, प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानो ।
संज्वलन चौकरी गुनिये, सब भेद जु षोडश मुनिये ॥
परिहास अरति रति शोग, भय ग्लानि तिवेद संयोग ।
पनवीस जु भेद भये इम, इनके वश पाप किये हम ॥
निद्रावश शयन कराई, सुपनेमधि दोष लगाई ।
फिर जागि विषय—वन धायो, नानाविध विष—फल खायो ॥
किये आहार निहार विहारा, इनमें नहिं जतन विचारा ।
बिन देखा धरा उठाया, बिन शोधा भोजन खाया ॥
तब ही परमाद सतायो, बहुविधि विकलप उपजायो ।
कछु सुधि बुधि नाहिं रही है, मिथ्या मति छाय गयी है ॥
मरजादा तुम ढिग लीनी, ताहूमें दोष जु कीनी ।
भिन भिन अब कैसें कहिये, तुम ज्ञानविषैं सब पइये ॥

१- क्षुधा परीषह

अनशन ऊनोदर तप पोषत पक्ष मास दिन बीत गये हैं।
जो नहिं बने योग्य भिक्षाविधि सूख अंग सब शिथिल भये हैं॥
तब तहाँ दुस्सह भूख की वेदना सहित साधु नहिं नेक नये हैं।
तिनके चरण कमल प्रति प्रति दिन हाथ जोड़ हम सीस नये हैं॥

२ तृषा परीषह

पराधीन मुनिवर की भिक्षा पर घर लेंय कहैं कछु नाहीं।
प्रकृतिविरुद्ध पारणा भुञ्जत बढ़त प्यास की त्रास तहां ही॥
ग्रीषमकाल पित्त अति कोपे लोचन दोय फिरे जब जाहीं।
नीर न चहैं सहै ऐसे मुनि जयवन्तो वरतो जग मांहीं॥

३ – शीत परीषह

शीतकाल सब ही जन कम्पैं खड़े जहां वनवृक्ष दहे हैं।
झंझा वायु बहे वर्षा ऋतु वर्षत बादल झूम रहे हैं॥
तहां धीर तटिनी तट चौपट ताल पाल पर कर्म दहे हैं।
सहैं सम्हाल शीत की बाधा ते मुनि तारण तरण कहे हैं॥

४ – उष्ण परीषह

भूख प्यास पीड़े उर अंतर प्रज्वले आंत देह सब दागे।
अग्निस्वरूप धूप ग्रीषम की ताती वायु झाल सी लागे॥
तपै पहाड़ ताप तन उपजै कोप पित्त दाहज्वर जागे।
इत्यादिक गर्मी की बाधा सहै साधु धैर्य नहिं त्यागे।

५ दंशमशक परीषह

दंशमशक माखी तनु काटैं पीड़ैं वन पक्षी बहुतेरे
डसैं व्याल विषहारे बिच्छू लगैं खजूरे आन घनेरे
सिंह स्याल शुंडाल सतावैं रीछ रोझ दुख देंय घनेरे
ऐसे कष्ट सहैं समभावन ते मुनिराज हरो अघ मेरे

६—नग्न परीषह

अन्तर विषय वासना वर्तैं बाहिर लोकलाज भय भारी ।
तातैं परम दिगम्बर मुद्रा धर नहिं सकैं दीन संसारी ॥
ऐसी दुद्धर नग्न परीषह जीतैं साधु शील व्रतधारी ।
निर्विकार बालकवत् निर्भय तिनके पायन धोक हमारी ॥

७—अरति परीषह

देश काल को कारण लहिकैं होत अचैन अनेक प्रकारैं ।
तब तहां खिन्न होय जगवासी कलमलाय थिरतापन छाड़ैं ॥
ऐसी अरति परीषह उपजत तहां धीर धीरज उर धारैं ।
ऐसे साधुन को उर अन्तर बसो निरन्तर नाम हमारैं ॥

८—स्त्री परीषह

जे प्रधान केहरि को पकड़ैं पन्नग पकड़ पान से चम्पत ।
जिनकी तनक देख भौं बांकी कोटिन सूर दीनता जंपत ॥
ऐसे पुरुष पहाड़ उठावन प्रलय पवन त्रिय वेद पयंपत ।
धन्य धन्य ते साधु साहसी मन सुमेरु जिनको नहिं कंपत ॥

९—चर्या परीषह

चार हाथ परिमाण निरख पथ चलत दृष्टि इत उत नहिं तानैं ।
कोमल पांव कठिन धरती पर धरत धीर बाधा नहिं मानैं ॥
नाग तुरङ्ग पालकी चढ़ते ते स्वाद उर याद न आनैं ।
यों मुनिराज सहैं चर्या दुख तब दृढ़ कर्म कुलाचल भानैं ॥

१०—आसन परीषह

गुफा मसान शैल तरु कोटर निवसैं जहां शुद्ध भू हेरैं ।
परिमित काल रहैं निश्चल तन बार बार आसन नहिं फेरैं ॥
मानुष देव अचेतन पशुकृत बैठे विपत आन जब घेरैं ।
ठौर न तजैं भजैं थिरता पद ते गुरु सदा बसो उर मेरैं ॥

११—शयन परीषह

जे महान सोने के महलन सुन्दर सेज सोय सुख जोवें।
ते अब अचल अंग एकासन कोमल कठिन भूमिपर सोवें॥
पाहनखण्ड कठोर कांकरी गड़त कोर कायर नहिं होवें।
ऐसी शयन-परीषह जीतत ते मुनि कर्म--कालिमा धोवें॥

१२—आक्रोश परीषह

जगत जीव यावन्त चराचर सबके हित सबको सुखदानी।
तिन्हें देख दुर्वचन कहें शठ पाखंडी ठग यह अभिमानी॥
मारो याहि पकड़ पापी को तपसी भेष चोर है छानी।
ऐसे कुवचन-वाण की विरियां क्षमा ढाल ओढ़ें मुनि ज्ञानी॥

१३—वध बन्धन परीषह

निरपराध निर्वैर महामुनि तिनको दुष्ट लोग मिल मारैं।
कोई खैंच खम्भ से बांधें कोई पावक में परजारैं॥
तहाँ कोप नहिं करैं कदाचित पूरब कर्मविपाक विचारैं।
समरथ होय सहैं वध बन्धन ते गुरु सदा सहाय हमारैं॥

१४—याचना परीषह

घोर वीर तप करत तपोधन भये क्षीण सूखी गलबांही।
अस्थिचाम अवशेष रहे तनु नशाजाल झलके जिसमांही॥
औषधि असन पान इत्यादिक प्राण जाय पर याचत नांही।
दुर्द्धर अयाचीक व्रत धारें करहिं न मलिन धर्म परछाँहीं।

१५—अलाभ परीषह

एकबार भोजन की विरियाँ मौन साध बस्ती में आवैं।
जो नहिं बने योग भिक्षाविधि तो महन्त मन खेद न लावैं॥
ऐसे भ्रमत बहुत दिन बीतें तब तपवृद्धि भावना भावैं।
यो अलाभकी परम परीषह सहें साधु सो ही शिव पावैं॥

१६—रोग परीषह

वात पित्त कफ श्रोणित चारों ये जब घटैं बढ़ैं तनु माहीं।
रोग संयोग सोक जब उपजत जगत-जीव कायर हो जाहीं॥
ऐसी व्याधि वेदना दारुण सहैं सूर उपचार न चाहीं।
आतमलीन विरक्त देहसे जैन यती निज नेम निबाहीं॥

१७—तृणस्पर्श परीषह

सूखे तृण और तीक्षण काँटे कठिन कांकरी पांव विदारैं।
रज उड़ आन पड़े लोचनमें तीर फांस तनु पीर विथारैं॥
तापर पर सहाय नहिं वांछत अपने करसों काढ़ न डारैं।
यों तृणस्पर्श परीषह विजयी ते गुरु भव भव शरण हमारैं॥

१८—मल परीषह

यावज्जीव जलन्हौन तजो जिन नग्नरूप वन थान खड़े हैं।
चलैं पसेव धूपकी बिरियां उड़त धूल सब अङ्ग भरे हैं॥
मलिन देहको देख महा मुनि मलिनभाव उर नाहिं करे हैं।
यों मलजनित परीषह जीतैं तिनहिं पांय हम सीस धरे हैं॥

१९—सत्कार पुरस्कार परीषह

जो महान् विद्यानिधि विजयी चिर तपसी गुण अतुल भरे हैं।
तिनकी विनय वचन सों अथवा उठ प्रणाम जन नाहिं करे हैं॥
तो मुनि तहां खेद नहिं मानैं उर मलीनता भाव हरे हैं।
ऐसे परम साधुके अहनिश हाथ जोड़ हम पांय परे हैं॥

२०—प्रज्ञा परीषह

तर्क छंद व्याकरण कलानिधि आगम अलंकार पढ़ जानैं।
जाकी सुमति देख परवादी विलखे होय लाज उर आनैं॥
जैसे सुनत नाद केहरिको वन-गयन्द भाजत मद छानैं।
ऐसी महाबुद्धि के भाजन पै मुनीश मद रंच न ठानैं॥

२१—अज्ञान परीषह

सावधान वर्तें निशि वासर संयम शूर परम वैरागी।
पालत गुप्ति गये दीरघ दिन सकल सङ्ग ममता परत्यागी॥
अवधिज्ञान अथवा मनपर्य्यय केवलऋद्धि आज नहिं जागी।
यों विकलप नहिं करें तपोधन सो अज्ञान विजयी बड़ भागी॥

२२—अदर्श परीषह

मैं चिर काल घोर तप कीने अजहुं ऋद्धि अतिशय नहिं जागे।
तपबल सिद्धि होय सब सुनिये सो कुछ बात झूंठसी लागे॥
यों कदापि चितमें नहिं चिन्तत समकित शुद्ध शान्ति रस पागे।
सोई साधु अदर्शन-विजयी ताके दर्शन से अघ भागे॥

卐

किस कर्मके उदय से कौन परीषह होती है ?

(घनाक्षरी छन्द)

ज्ञानावरणीतें दोइ प्रज्ञा अज्ञान होइ,
एक महा मोहतें अदर्शन बखानिये।
अन्तराय कर्मसेती उपजो अलाभ दुख,
सप्त चारित्रमोहिनी केवल जानिये।
नगन निषध्या नारि मान सन्मान गारि,
याचना अरति सब ग्यारह ठीक ठानिये।
एकादश बाकी रहीं वेदना उदयसे कहीं,
बाईस परीषह उदय ऐसे उर आनिये।

(अडिल्ल छन्द)

एकबार इनमाहिं एक मुनि के कही ।
सब छतीस उत्कृष्ट उदय आवें सही ॥
आसन शयन विहार दोय इन माहिं की ।
शील स्वभाव में एक तीन ये नाहिं की ॥२६॥

卐

शारदा-स्तवन

(पं० ज्ञानानन्द जी कृत)

केवलि-कन्ये वाङ्मयगंगे जगदम्बे अघ नाश हमारे ।
सत्यस्वरूपे मंगलरूपे मन—मन्दिर में तिष्ठ हमारे ॥टेक॥

जम्बूस्वामी गौतम गणधर, हुए सुधर्मा पुत्र तुम्हारे ।
जग तैं स्वयं पार होकर, दे उपदेश बहुत जन तारे ॥१॥

कुन्दकुन्द अकलंक देव अरु, विद्यानंदि आदि मुनि सारे ।
तव कुलकुमुद चन्द्रमा ये शुभ शिक्षामृत दे स्वर्ग सिधारे ॥२॥

तूने उत्तम तत्व प्रकाशे जगके भ्रम सब क्षय कर डारे ।
तेरी ज्योति निरख लज्जावश रवि शशि छिपते नित्य विचारे ॥३॥

भव भय पीड़ित व्यथित चित्त जन जब जो आये शरण तिहारे ।
छिन भर में उनके तब तुमने करुणा कर संकट सब टारे ॥४॥

जब तक विषय कषाय नशै नहिं कर्मशत्रु नहिं जावें निवारे ।
तब तक "ज्ञानानन्द" रहै नित सब जीवन तैं समता धारे ॥५॥

卐

मुनिराज का बारह मासा

(राग मरहठी)

मैं बन्दूं साधु महन्त बडे गुणवन्त सभी चित लाके।
जिन अथिर लखा संसार बसे वन जाके ॥ टेक ॥

चित चैत में व्याकुल रहे काम तन दहे न कुछ बन आवे।
फूली वनराई देख मोह भ्रम छावे ॥
जब शीतल चले समीर स्वच्छ हो नीर भवन सुख भावे।
किस तरह योग योगीश्वर से बन आवे ॥
तिस अवसर श्रीमुनि ज्ञानी, रहें अचल ध्यान में ध्यानी।
जिन काया लखी पयानी, जग ऋद्धि खाक सम जानी ॥
उस समय धीर धर रहें अमर पद लहें ध्यान शुभ ध्याके।
जिन अथिर लखा संसार बसे वन जाके ॥ १ ॥

जब आवत है बैसाख होय तृण खाक तप्त से जलके।
सब करें धाम विश्राम पवन झल झलके ॥
ऋतु गर्मी में संसार पहिन नर नार वस्त्र मलमल के।
वे जलसे करते नेह जो हैं जी थलके ॥
तिस समय मुनी महाराजे, तन नग्न शिखर गिरि राजे।
प्रभु अचल सिंहासन राजे, कहो क्यों न कर्मदल लाजे ॥
जो घोर महा तप करें मोक्षपद धरें बसें शिव जाके।
जिन अथिर लखा संसार बसे वन जाके ॥ २ ॥

जब पडे ज्येष्ठ में ज्वाला होय तन काला धूपकी मारी।
घर बाहर पग नहि धरे कोई नरनारी ॥
पानी से छिडकें धाम करें विश्राम सकल नर नारी।
घर खस की टटिया छिपें लहकी मारी ॥

मुनिराज ध्यान गुण पूरे, तब काटें कर्म अंकूरे ।
तनु लिपटत कानखजूरे, मधु मक्ष ततइयें भूरे ॥
चिंटियोंने बिल तन करे आप मुनि खड़े हाथ लटकाके ।
जिन अथिर लखा संसार वसे वन जाके ॥६॥

आश्विनमें वर्षा गई समय नहिं रही दशहरा आया ।
नहिं रही वृष्टि अरु कामदेव लहराया ॥
कामी नर करें किलोल बनावें डोल करें मन भाया ।
है धन्य साधु जिन आतमध्यान लगाया ॥

वसु याम योग में भीने, मुनि अष्ट कर्म क्षय कीने ।
उपदेश सबन को दीने, भविजन को नित्य नवीने ॥
हैं धन्य धन्य मुनिराज ज्ञानके ताज नमूं शिर नाके ।
जिन अथिर लखा संसार वसे वन जाके ॥७॥

कार्तिक में आया शीत भई विपरीत अधिक शरदाई ।
संसारी खेलें जुआ कर्म दुखदाई ॥
जग नर नारीका मेल मिथुन सुख केल करें मन-भाई ।
शीतल ऋतु कामी-जनको है सुखदाई ॥

जब कामी काम कमावें, मुनिराज ध्यान शुभ ध्यावें ।
सरवर तट ध्यान लगावें, सो मोक्षभवन सुख पावें ॥
सुन महिमा अपरम्पार न पावे पार कोई नर गाके ।
जिन अथिर लखा संसार वसे वन जाके ॥ ८ ॥

अगहनमें टपके शीत यही जग रीत सेज मन भावे ।
अति शीतल चलें समीर देह थर्रावे ॥
शृङ्गार करे कामिनी रूप रस ठनी साम्हने आवे ।
उस समय कुमति बन सबका मन ललचावे ॥

कीर्ति कुमकुमें बनावें, कर्मों से फाग रचावें ।
जो बारामासा गावें, सो अजर अमर पद पावें ॥
यह भाखें जियालाल धर्मगुणमाल योग दर्शाके ।
जिन अथिर लखा संसार बसे वन जाके ॥१२॥

卐

राजुल का बारहमासा

[राग मरहटी [झड़ी]

मै लूंगी श्रीअरहन्त सिद्ध भगवन्त साधु सिद्धान्त चार का सरना ।
निर्नेम नेम बिन हमें जगत क्या करना ॥ टेक ॥

आषाढ़ मास [झड़ी]

सखि आया अषाढ़ घनघोर मोर चहुँ ओर मचा रहे शोर इन्हें
समझावो । मेरे प्रीतम की तुम पवन परीक्षा लावो ।
हैं कहां मेरे भरतार कहां गिरनार महाव्रत धार बसे किस वनमें ।
क्यों बांध मौर दिया तोड़ क्या सोची मन में ॥
तू जा रे पपैया जा रे, प्रीतम को दे समझा रे ।
रही नौ भव संग तुम्हारे, क्यों छोड़ दई मझधारे ॥
क्यों बिना दोष भये रोष नहीं संतोष यही अफसोस बात नहिं बूझी ।
दिये जादों छप्पन कोड़ छोड़ क्या सूझी ?
मोहि राखो शरण मंझार, मेरे भर्तार करो उद्धार क्यों दे गये झुरना ।
निर्नेम नेम बिन हमें जगत क्या करना ॥

श्रावण मास [झड़ी]

सखि श्रावण संवर करे समन्दर भरे दिगम्बर धरे कहो क्या करिये ।
मेरे जी में ऐसी आवे महाव्रत धरिये ॥

सब तजूं हार शृंगार तजूं संसार क्यों भव मंझार में जी भरमाऊं ।
क्यों पराधीन तिरिया का जन्म मैं पाऊं ।
सब सुन लो राजदुलारी, दुख पड़ गया हम पर भारी ।
तुम तज दो प्रीति हमारी, कर दो संयम की त्यारी ॥
अब आगया पावस काल करो मत टाल भरे सब ताल महा जल
बरसें । बिन पाये श्रीमद्गुरुजन नेम को तरसे ।
मैं नज़ दई तीज सलोन पलट गई पौन मेरा है कौन मुझे जग तरना ।
निर्नेम नेम बिन हमें जगत क्या करना ॥

भादों मास [सखी]

सखि भादों भरे तलाव मेरे चितचाव करूंगी उछाव से सोलहकारण ।
करूं दशलक्षण के व्रत से पाप निवारण ।
करूं रोटतीज उपवास पंचमी अकाश अष्टमी त्याग निशल्य मनाऊं ।
तप कर सुगन्धदशमी को कर्म जलाऊं ॥
सखि दुद्धर रसरी धारा, तजि हार भार परहारा ।
करूं उग्र उग्र तप सारा, ज्यों होय मेरा निस्तारा ।
मैं रत्नत्रय व्रत धरूं चतुर्दशि करूं जगत से भिन्न करूं पखवाड़ा ।
मैं सब से क्षमाऊं दोष तजूं सब राड़ा ।
मैं मानो तत्व विचार की माडूं [illegible] संसार सों फिर क्या
करना । निर्नेम नेम बिन हमें जगत क्या करना ॥

मेरे हेतु कमण्डलु लाओ, इक पीछी नई मंगाओ।
मेरा मत ना जी भरमाओ, मत सूते कर्म जगाओ।
है जग में असाता कर्म बड़ा बेशर्म मोहके भर्म से धर्म न सूझै।
इसके वश अपना हित कल्याण न बूझै।
जहाँ मृग-तृष्णा की धूर वहां पानी दूर भटकना भूर कहाँ जल
झरना। निर्नेम नेम बिन हमें जगत क्या करना॥

कार्तिक मास [झड़ी]

सखि कार्तिक काल अनन्त श्रीअरहन्त की सन्त महन्त ने आज्ञा पाली।
धर योग यत्न भव भोगकी तृष्णा टाली।
सजे चौदह गुण अस्थान स्वपर पहचान तजे रु मकान महल
दीवाली। लगा उन्हें मिष्ट जिनधर्म अमावस काली॥
उन केवलज्ञान उपाया, जग का अन्धेर मिटाया।
जिसमें सब विश्व समाया, तन धन सब अथिर बताया॥
है अथिर जगत् सम्बन्ध अरी मतिमन्द जगतका अन्ध है धुन्ध
पसारा। मेरे प्रीतम ने सत जानके जगत बिसारा।
मैं उनके चरण की चेरी, तू आज्ञा मुझको देरी, सुनले माँ मेरी।
है एक दिन मरना। निर्नेम नेम०॥

अगहन मास [झड़ी]

सखि अगहन ऐसी घड़ी उदय में पड़ी मैं रह गई खड़ी दरस नहिं
पाये। मैंने सुकृत के दिन विरथा यों ही गंवाये।
नहीं मिले हमारे पिया न जप तप किया न संयम लिया अटक रही
जग में। पड़ी काल अनादि से पाप की बेड़ी पग में॥
मत भरियो मांग हमारी, मेरे शील को लागे गारी।
मत डारो अञ्जन प्यारी, मैं योगिन तुम संसारी॥

हुए कन्त हमारे जती मैं उनकी सती पलट गई रही तो धर्म नहिं खण्डूं। मैं अपने पिताके वंशको कैसे भंडूं।
मैं सच्चा शील सिंगार धरी नथ उतार गये भर्तार के संग आचरना।
निर्मम नेम० ॥

पौष मास (सखी)

सखि लगा महीना पोह पे माया मोह जगतसे द्रोह रु प्रीत करावें।
हरें ज्ञानावरणी ज्ञान अदर्शन छावें।
पर द्रव्यमें ममता हरें तो चूरी परें जु सम्बर करें तो अन्तर टूटे।
अरु हंस नीच कुल नाम की संज्ञा छूटें ॥
क्यों थोड़ी उमर घटावे, क्यों सम्पति को बिलगावें।
क्यों पराधीन दुख पावें, जो संयममें चित लावें ॥
सखि क्यों कहलावें दीन क्यों हो छवि छीन क्यों विद्याहीन मलीन कहावें। क्यों नारि नपुंसक जन्म में कर्म नचावें ॥
सखि शील शृंगार तजें संसार जिन्हें दरकार नरक में पड़ना।
निर्मम नेम० ॥

माघ मास (सखी)

सखि आयगा माह वसन्त हमारे कन्त भये अरहन्त वो केवलज्ञानी।
उन महिमा शील कुशील की ऐसे बखानी ॥
दिये सेठ सुदर्शन शूल भई मखतूल पड़ी पग फूल हुई अघहानी।
दे मुक्ति गये अरु भई कलंकित रानी ॥
कीचक ने मन ललचाया, द्रौपदी पर भाव धराया।
उसे भीम ने मार गिराया, उन किया जैसा फल पाया ॥
फिर सखी दुर्योधन और हुई दरजोर जुद्ध भई भीम हाड़ चढ़ि आये,
गये पाण्डु कुल में हार न पार बसाये।

चतुर्विध सेना सङ्ग सजाय, नाथ कर कृपा हरो दुख पाय ॥७॥

माघ में चले लड़न युग वीर, कर डेरा सरयू के तीर।
सुनत आये लड़ने रघुवीर, चलाये खेंच विविध शर धीर॥
दोहा- प्रबल युद्ध पुत्रन किया हरि बल मुहरा फेर।
चक्र चलाया तब लक्ष्मण ने विफल भयो सो हेर॥
विचारा ये ही हरि बलराय, नाथ कर कृपा हरो दुख आय ॥८॥

फाग में भामण्डल हनुमान, कही ये सीता सुत बलवान।
मिले तब हरिबल आनन्द ठान, अवधमें बाढ़ो हर्ष महान्॥
दोहा- तब सब ने बिनती करी सीता लेहु बुलाय।
सो स्वीकार करी रघुवर ने सब नृप लाये धाय॥
मिलन को चलीं सिया हर्षाय, नाथ कर कृपा हरो दुख आय ॥९॥

चैत्र में बोले राम रिसाय, धीज बिन लिये न आवो धाय।
तबै बोली सीता बिलखाय, कहो सो लेहु धीज दुखदाय॥
दोहा- विष खाऊं पावक जरलूं करूं जो आज्ञा होय।
कही राम पावक में पैठो सीता मानो सोय॥
दयो तब पावक कुण्ड जलाय, नाथ कर कृपा हरो दुख आय ॥१०॥

जपति वैसाख में प्रभु का नाम, अग्नि में पैठी रघुवर भाम।
शील महिमा से देव तमाम, अग्नि का कीना जल तिस ठाम॥
दोहा- कमलासन पर जानकी बैठारी सुर आप।
बढा नीर जल डूबन लागे करते भये विलाप॥
करो रक्षा हम सीता माय, नाथ कर कृपा हरो दुख आय ॥११॥

जेठ मे राम मिलन चाले, लूंचि कच सिय सन्मुख डाले।
लयी दिक्षा लगुनन पाले, किया तप, दुर्द्धर अघ जाले॥

(१)

नारक की गति आगति दोय, नरतिर्यंचपंचेन्द्री जोय ।
जाय असेनी पहला लगे, मन बिन हिंसा कर्म न पगे ॥ ९
श्रीसर्प दूजे लों जाय, अरु पक्षी तीजे लों थाय ।
सर्प जाय चौथे लों सही, नाहर पंचम आगे नहीं ॥ १०
नारी छट्ठे लग ही जाय, नर अरु मत्स्य सातवें थाय ।
ये तो नारक आगत कही, अब सुन नारक की गति सही ॥ ११
नरक सातवेंको जो जीव, पशुगति ही पावे दुख दीव ।
और सब नारक मर नर पशू, दोई गति आवें परवशू ॥ १२
छट्ठे को निकसो जु कदापि, सम्यकसहित श्रावगति पाय ।
पंचम निकसो मुनि हू होय, चौथे को केवल हू कोय ॥ १३
तीजे नर्क को निकसो जीव, तीर्थंकर भी होय जगदीव ।
यह नारक की गत्यागती, भाषी जिनवानी में सती ॥ १४

(२)

तेरह दंडक देवनिकाय, तिनके भेद सुनो मन लाय ।
नर तिर्यंचपंचेन्द्री बिना, और न को नहिं सुरपद गिना ॥ १५
देव मरे गति पांच लहाय, भू जल तरुवर नर तिर मांहि ।
दूजे स्वर्ग ऊपरले देव, थावर होय न कही जिन देव ॥ १६
सहस्रार में ऊंचे सुरा, मर कर होवें निश्चय नरा ।
भोगभूमि के तिर्यंच नरा, दूजे देवलोक ते परा ॥ १७
जाँय नहीं यह निश्चय कही, देवन भोगभूमि नहिं लही ।
कर्मभूमिया नर अरु ढोर, इन बिन भोगभूमि की ठौर ॥ १८
जांय न तातें आगत होय, गति इन की देवन की होय ।
कर्मभूमिया तिर्यंच बुद्ध, श्रावक व्रत धर मारग शुद्ध ॥ १९

गति पच्चीस कही नर तनी, आगति पुनि बाईसहिं भनी ॥ ३१
तेजकाय अरु वायु जो काय, इन विन और सबै नर थाय ।
गति पच्चीस आगति बाईस, मनुपतनी भाषी जो ईश ॥ ३२
ताहि सुरासुर आतमरूप, ध्यावें चिदानंद चिद्रूप ।
तो उतरो भवसागर भया, और न शिवपुरी मारग लिया ॥ ३३
यह सामान्य मनुप की कही, अब सुन पदवीधर की सही ।
तीर्थंकर की दोई आगती, स्वर्ग नरक तें आवें सती ॥ ३४
फेर न गति धारें जगदीश, जाय विराजें जगके शीश ।
चक्री अर्धचक्री अरु हली, सुरग लोकतें आवें वली ॥ ३५
इनकी आगति एकहि जान, गति की रीति कहूँ जो वखान ।
चक्री की गति तीन जो होय, सुरग नरक अरु शिवपुर जोय ॥ ३६
तप धारें तो शिवपुर जाय, मरें राज्य में नरकहिं ठाय ।
आखिर में होय पद निरवान, पदवी-धारक बड़े प्रधान ॥ ३७
बलभद्रनकी दोयहि गती, सुरग जांहि कै ह्वै शिवपती ।
तप धारें ये निश्चय भया, मुक्तिपात्र ये श्रुति में कह्या ॥ ३८
अर्द्धचक्रि को एकहि भेद, नारक होय लहै अति खेद ।
राजमाहि ये निश्चय मरें, तद्भवमुक्ति पंथ नहिं धरें ॥ ३९
आखिर पावें जिनवर लोक, पुरुष शलाका शिवके थोक ।
ये पद कबहूँ न पाये जीव, ये पद पाय होय शिवपीव ॥ ४०
औरहु पद कटपक नहिं गहे, कुलकर नारदपदहु न लहे ॥
रुद्र भये न मदन ना भये, जिनवर मात पिता नहिं थये ॥ ४१
ये पद पाय जीव नहिं रुलै, थोड़ेहि दिन में जिन सम तुलै ।
इनकी आगति श्रुतमें जानि, गति को भेद कहूँ जो बखानि ॥ ४२
कुलकर देवलोक ही गहैं, मदन मुक्त शिवपुर को लहैं ।

जिनमारग उर धारिये, होहैं भवदधि पार ॥ ५५

जिन भन सब परपंच तज, बड़ी बात है एह ।

पंच महाव्रत धारिकैं, भवजलकों जल देह ॥ ५६

अंतरकरण जु सुद्ध ह्वै, जिनधर्मी अभिराम ।

भाषा कारण कर सकूं, भाषी दौलतराम ॥ ५७

भावप्रधान क्रिया

श्रवण दर्श पूजन भी मैंने यदि हो किसी समय कीना ।

तो भी सच्ची भक्ति भाव से नहीं तुम्हें चित में दीना ॥

इस ही कारण हे जग-बांधव, दुखभाजन मैं हुआ अभी ।

भावरहित हो क्रिया कोई भी, नहिं होती है फलित कभी ॥

[७]

हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम् ।१। देशसर्वतो-
ऽणुमहती ।२। तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पंच पंच ।३। वाङ्मनोगु-
प्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपानभोजनानि पंच ।४। क्रोध-
लोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचिभाषणं च पंच ।५। शून्या-
गारविमोचितावासपरोपरोधाकरणभैक्ष्यशुद्धिसधर्माविसंवादाः पंच
।६। स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहराङ्गनिरीक्षणपूर्वरतानुस्मरणवृष्ये-
ष्टरसस्वशरीरसंस्कारत्यागाः पंच ।७। मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रियविषयराग-
द्वेषवर्जनानि पंच ।८। हिंसादिष्विहामुत्रापायावद्यदर्शनम् ।९। दुःख-
मेव वा ।१०। मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थ्यानि च सत्त्वगुणाधिक-
क्लिश्यमानाविनयेषु ।११। जगत्कायस्वभावौ वा संवेगवैराग्यार्थम्
।१२। प्रमत्तयोगात् प्राणव्यपरोपणं हिंसा ।१३। असदभिधानम-
नृतम् ।१४ अदत्तादानं स्तेयम् ।१५। मैथुनमब्रह्म ।१६। मूर्छा
परिग्रहः ।१७। निःशल्यो व्रती ।१८। अगार्यनगारश्च ।१९ अणु-
व्रतोऽगारी ।२०। दिग्देशानर्थदण्डविरतिसामायिकप्रोषधोपवासोप-
भोगपरिभोगपरिमाणातिथिसंविभागव्रतसम्पन्नश्च ।२१। मारणान्तिकीं
सल्लेखनां जोषिता ।२२। शङ्काकाङ्क्षाविचिकित्सान्यदृष्टि-
प्रशंसासंस्तवाः सम्यग्दृष्टेरतीचाराः ।२३। व्रतशीलेषु पंच पंच
यथाक्रमम् ।२४। बन्धवधच्छेदातिभारारोपणान्नपाननिरोधाः ।२५।
मिथ्योपदेशरहोभ्याख्यानकूटलेखक्रियान्यासापहारसाकारमंत्रभेदाः
।२६। स्तेनप्रयोगतदाहृतादानविरुद्धराज्यातिक्रमहीनाधिकमानोन्मा-
नप्रतिरूपकव्यवहाराः ।२७। परविवाहकरणेत्वरिकापरिगृहीतापरि-
गृहीतागमनानङ्गक्रीडाकामतीव्राभिनिवेशाः ।२८। क्षेत्रवास्तुहिर-

स्पर्शरसगन्धवर्णानुपूर्व्यगुरुलघूपघातपरघातातपोद्योतोच्छ्वासविहायोगतयः प्रत्येकशरीरत्रससुभगसुस्वरशुभसूक्ष्मपर्याप्तिस्थिरादेययशःकीर्तिसेतराणि तीर्थंकरत्वं च ।११। उच्चर्नीचैश्च ।१२। दानलाभभोगोपभोगवीर्याणाम् ।१३। आदितस्तिसृणामंतरायस्य च त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यः परा स्थितिः ।१४। सप्ततिर्मोहनीयस्य ।१५। विंशतिर्नामगोत्रयोः ।१६ त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुषः ।१७। अपरा द्वादशमुहूर्ता वेदनीयस्य ।१८। नामगोत्रयोरष्टौ ।१९। शेषाणामन्तर्मुहूर्ता ।२०। विपाकोऽनुभवः ।२१। स यथानाम ।२२। ततश्च निर्जरा ।२३। नामप्रत्ययाः सर्वतो योगविशेषात्सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहस्थिताः सर्वात्मप्रदेशेष्वनन्तानन्तप्रदेशाः ।२४। सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यम् ।२५। अतोऽन्यत्पापम् ।२६।

※ इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे अष्टमोऽध्यायः ※

[९]

आस्रवनिरोधः संवरः ।१। स गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षापरीषहजयचारित्रैः ।२। तपसा निर्जरा च ।३। सम्यग्योगनिग्रहो गुप्तिः ।४। ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गाः समितयः ।५। उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिञ्चन्यब्रह्मचर्याणि धर्माः ।६। अनित्याशरणसंसारैकत्वान्यत्वाशुच्यास्रवसंवरनिर्जरालोकबोधिदुर्लभधर्मस्वाख्याततत्त्वानुचिन्तनमनुप्रेक्षाः ।७ मार्गाच्यवननिर्जरार्थं परिषोढव्याः परीषहाः ।८। क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनाग्न्यारतिस्त्रीचर्यानिषद्याशय्याक्रोशवधयाचनालाभरोगतृणस्पर्शमलसत्कारपुरस्कारप्रज्ञाज्ञानादर्शनानि ९। सूक्ष्मसाम्परायछद्मस्थवीतरागयोश्चतुर्दश ।१०। एकादश जिने ११ बादरसाम्पराये सर्वे ।१२। ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने ।१३।

दर्शनमोहान्तराययोरदर्शनालाभौ ।१४। चारित्रमोहे नाग्न्यारतिस्त्री-
निषद्याक्रोशयाचनासत्कारपुरस्काराः ।१५। वेदनीये शेषाः ।१६।
एकादयो भाज्या युगपदेकस्मिन्नैकोनविंशतेः ।१७। सामायिकच्छे-
दोपस्थापनापरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसाम्पराययथाख्यातमिति चारित्रम्
।१८। अनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनका-
यक्लेशा बाह्यं तपः ।१९। प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्त्यस्वाध्यायव्युत्सर्ग-
ध्यानान्युत्तरम् ।२०। नवचतुर्दशपंचद्विभेदा यथाक्रमं प्राग्ध्यानात् ।२१।
आलोचनाप्रतिक्रमणतदुभयविवेकव्युत्सर्गतपश्छेदपरिहारोपस्थापनाः ।२२।
ज्ञानदर्शनचारित्रोपचाराः ।२३। आचार्योपाध्यायतपस्विशै-
क्ष्यग्लानगणकुलसंघसाधुमनोज्ञानाम् ।२४। वाचनापृच्छनानुप्रेक्षाम्ना-
यधर्मोपदेशाः ।२५। बाह्याभ्यन्तरोपध्योः ।२६। उत्तमसंहननस्यैका-
ग्रचिन्तानिरोधो ध्यानमान्तर्मुहूर्तात् ।२७। आर्त्तरौद्रधर्म्यशुक्लानि
।२८। परे मोक्षहेतू ।२९। आर्त्तममनोज्ञस्य सम्प्रयोगे तद्विप्रयोगाय
स्मृतिसमन्वाहारः ।३०। विपरीतं मनोज्ञस्य ।३१। वेदनायाश्च ।३२।
निदानं च ।३३। तदविरतदेशविरतप्रमत्तसंयतानाम् ।३४। हिंसानृत-
स्तेयविषयसंरक्षणेभ्यो रौद्रमविरतदेशविरतयोः ।३५। आज्ञापायविपा-
कसंस्थानविचयाय धर्म्यम् ।३६। शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः ।३७। परे
केवलिनः ।३८। पृथक्त्वैकत्ववितर्कसूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिव्युपरतक्रिया-
निवर्तीनि ।३९। त्र्येकयोगकाययोगायोगानाम् ।४०। एकाश्रये सवित-
र्कवीचारे पूर्वे ।४१। अवीचारं द्वितीयम् ।४२। वितर्कः श्रुतम् ।४३।
वीचारोऽर्थव्यञ्जनयोगसंक्रान्तिः ।४४। सम्यग्दृष्टिश्रावकविरता-
नन्तवियोजकदर्शनमोहक्षपकोपशमकोपशान्तमोहक्षपकक्षीणमोहजिनाः
क्रमशोऽसंख्येयगुणनिर्जराः ।४५। पुलाकबकुशकुशीलनिर्ग्रन्थस्नातका-
निर्ग्रन्थाः ।४६। संयमश्रुतप्रतिसेवनातीर्थलिङ्गलेश्योपपादस्थान-

विकल्पतः साध्याः ।४७।

❀ इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे नवमोऽध्यायः ❀

[१०]

मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलम् ।१। बन्ध-हेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः ।२। औपशमिका-दिभव्यत्वानां च ।३। अन्यत्र केवलसम्यक्त्वज्ञानदर्शनसिद्धत्वेभ्यः ।४। तदनन्तरमूर्ध्वं गच्छत्यालोकान्तात् ।५। पूर्वप्रयोगादसङ्गत्वाद्ब-न्धच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्च ।६। आविद्धकुलालचक्रवद्व्यपगतलेपा-लाबुवदेरण्डबीजवदग्निशिखावच्च ।७। धर्मास्तिकायाभावात् ।८। क्षेत्रकालगतिलिङ्गतीर्थचारित्रप्रत्येकबुद्धबोधितज्ञानावगाहनान्तरस-ङ्ख्याल्पबहुत्वतः साध्याः ।९।

❀ इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे दशमोऽध्यायः ❀

दशाध्याये परिच्छिन्ने तत्त्वार्थे पठिते सति ।
फलं स्यादुपवासस्य, भाषितं मुनिपुङ्गवैः ॥

जब वह आत्मा मोहादिक के उपशमादि को पा करके,
बाहर में गुरु उपदेशादिक श्रेष्ठ निमित्त मिला करके।
वमल सुदर्शन-ज्ञान-चरणमय अपनी ज्योति जगाता है,
उस सुशक्ति के प्रबल घात से घाति-चतुष्क नशाता है ॥६॥

तब वह भासमान होता स्थिर-अद्भुत-परम-सुगुण-गण से,
प्रगटित हुआ अचिंत्यसार है जिनका दुरित विनाशन से
केवलज्ञान सुदर्शन से अतिवीर्य-प्रवरसुख-समकित से
शेषलब्धि से भामण्डल से चमरादि की सम्पत से ॥७॥

सबको सदा जानता-लखता युगपत् व्याप्त-सुतृप्त हुआ,
घन-अज्ञान-मोह-तम-धुनता सबका सब निःस्वेद हुआ।
करता तृप्त सुवचनामृत से सभाजनों को औ करता
ईश्वरता सब प्रजाजनों की, अन्य ज्योति फीकी करता ॥८॥

आत्मा को आत्मस्वरूप से आत्मा में प्रतिक्षण ध्याता,
हुआ सातिशय वह आत्मा यों सत्य-स्वयम्भू-पद पाता।
वीतराग अर्हंत परमेष्ठी आप्त सार्व जिन कहलाता,
परंज्योति सर्वज्ञ कृती प्रभु जीवन्मुक्त नाम पाता ॥९॥
शेष निगड सम अन्य प्रकृतियां फिर छेदता हुआ सारी,
आयु वेदनी नाम गोत्र हैं मूल प्रकृतियां जो भारी।
उन अनन्तदृग्-बोध-वीर्य-सुख सहित शेष क्षायिकगुण से,
अव्याबाध-अगुरुलघु से औ सूक्ष्मपना अवगाहन से ॥१०॥
शोभमान होता तैसे ही अन्य गुणों के समुदय से,
प्रभवित हुए जो उत्तरोत्तर कर्म प्रकृतिके संक्षय से।
क्षणमें ऊर्ध्वगमन स्वभाव से शुद्ध-स्वर्ण मलहीन हुआ,
जा बसता है अग्रधाम में निरुपद्रव-स्वाधीन हुआ ॥११॥

यों अनन्त-ज्ञानादि गुणों की सम्पत् से जो युक्त सदा,
विविध सुनयतपसंयमसे हो सिद्ध न भजते विकृति कदा।
सम्यग्दर्शन--ज्ञान--चरण से तथा सिद्ध पद को पाते,
पूर्ण यशस्वी हुए विश्व देवाधिदेव जो कहलाते ॥१८॥

आवागमन-विमुक्त हुए जिनको करना कुछ शेष नहीं,
आत्मलीन सब दोषहीन जिनके विभावका लेश नहीं।
राग-द्वेष-भयमुक्त-निरञ्जन अजर अमर पद के स्वामी,
मङ्गलभूत पूर्ण विकसित, सत्चिदानन्द जो निष्कामी ॥१९॥

ऐसे हुए अनंत सिद्ध औ वर्तमान हैं सम्प्रति जो,
आगे होंगे सकल जगत में विबुध-जनों से संस्तुत जो।
उन सबको नत-मस्तक हो मैं वंदूँ तीनों काल सदा,
तत्स्वरूपकी शीघ्र प्राप्ति का इच्छुक होकर सहित मुदा ॥२०॥

कारण उनका जो स्वरूप है वही रूप सब अपना है,
उस ही तरह सुविकसित होगा इसमें लेश न कहना है।
उनके चिंतन-वंदन से निजरूप सामने आता है.
भूली निज निधि का दर्शन यों, प्राप्ति-प्रेम उपजाता है ॥२१॥

इससे सिद्ध-भक्ति है सच्ची जननी सब कल्याणों की,
श्रेयोमार्ग सुलभ करती बन हेतु कुशल-परिणामों की।
कही 'सिद्धि-सोपान' इसी से प्रौढ सुधीजन अपनाते,
पूज्यपादकी 'सिद्ध-भक्ति' लख 'युग-मुमुक्ष' अति हर्षाते ॥२२॥

* सिद्धिरस्तु *

卐

प्रतिमा दिगम्बर सदा चाहूँ ध्यान आसन सोहना।
वसु कर्म तै मैं छुटा चाहूँ शिव लहूँ जहं मोहना ॥६॥

मैं साधुजनको संग चाहूँ प्रीति तिन ही सों करौं।
मै पर्व के उपवास चाहूँ नव अरम्भैं परिहरौं॥
इस दुषम पंचम काल मांही कुल सुश्रावक मै लहो।
अरु महाव्रत धरिसकौं नाहीं निबल तन मैने गहो ॥७॥

आराधना उत्तम सदा चाहूँ सुनो जिनराय जी।
तुम कृपानाथ अनाथ 'द्यानत' दया करना न्याय जी॥
वसुकर्म नाश विकाश ज्ञान प्रकाश मोकों कीजिये।
करि सुगतिगमन समाधिमरन सुभक्ति चरनन दीजिये ॥८॥

卐

* पंचकल्याणक पाठ *

श्री गर्भकल्याणक

पणविवि पञ्च परमगुरु, गुरु जिन शासनो।
सकलसिद्धि दातार सु, विघन विनासनो॥
शारद अरु गरु गौतम, सुमति प्रकासनो।
मङ्गलकर चउ संघहि, पापपणासनो॥
पाप पणासन गुणहि गरुवा, दोष अष्टादश रहे।
धरि ध्यान कर्मविनाशि केवलज्ञान अविचल जिन लहे॥
प्रभु पञ्चकल्याणक विराजित, सकल सुर नर ध्यावहीं।
त्रैलोक्यनाथ सु देव जिनवर, जगत मङ्गल गावहीं ॥१॥

❁ श्री जन्मकल्याणक ❁

मतिश्रुतअवधिविराजित जिन जब जनमियो।
तिहूंलोक भयो छोभित, सुरगण भरमियो॥
कल्पवासि घर घंट, अनाहद बज्जियो।
जोतिष घर हरिनाद, सहज गल गज्जियो॥

गज्जियो सहजहिं शङ्ख भावन, भुवन शब्द सुहावने।
विंतर-निलय पटु पटह बज्जिय, कहत महिमा क्यों बने॥
कम्पित सुरासन अवधिबल जिन, जनम निहचै जानियो।
धनराज तब गजराज माया-मयी निरमय आनियो॥५॥

योजन लाख गयंद, वदन सौ निरमए।
वदन वदन वसु दन्त दन्त सर सण्ठए॥
सर सर सौ-पणबीस कमलिनी छाजहीं।
कमलिनि कमलिनि कमल पच्चीस विराजहीं॥

राजहीं कमलिनि कमल अठोतर-सौ मनोहर दल बने।
दल दलहिं अपछर नटहिं नवरस, हावभाव सुहावने॥
मणि कनक किङ्किण वर विचित्र, सु अमरमण्डप सोहए।
घन घंट चंवर धुजा पताका, देखि त्रिभुवन मोहए॥६॥

तिहिं करि हरि चढ़िआयउ, सुरपरिवारियो।
पुरहिं प्रदच्छन देत सु, जिन जयकारियो॥
गुप्त जाय जिन जननिहिं, सुखनिद्रा रची।
मायामयी शिशु राखि तो, जिन आन्यो सची॥

आन्यो सची जिनरूप निरखत, नयन त्रिपति न हूजिये।
तब परम हरषित हृदय हरि ने, सहस लोचन पूजिये॥

जनमाभिषेक महंत महिमा सुनत सब सुख पावहीं ।
भणि 'रूपचन्द्र' सुदेव जिनवर, जगत मङ्गल गावहीं ॥१०॥

卐

❀ श्री तप कल्याणक ❀

श्रमजलरहित शरीर, सदा सब मल रहिउ ।
छीर-वरन वररुधिर, प्रथम आकृति लहिउ ॥
प्रथम सारसंहनन सुरूप विराजहीं ।
सहज सुगंध सुलच्छन, मण्डित छाजहीं ॥

छाजहिं अतुलबल परमप्रिय हित, मधुर वचन सुहावने ।
दश सहज अतिशय सुभग मूरति, बाललील कहावने ॥
आबाल काल त्रिलोकपति मन रुचित उचित जु नित नये ।
अमरोपनीत पुनीत अनुपम, सकल भोग विभोगये ॥११॥

भवन भोग विरत्त, कदाचित चित्तए ।
धन यौवन प्रिय पुत्त, कलत्त अनित्तए ॥
कोई न शरन मरनदिन, दुख चहुंगति भर्यो ।
सुखदुख एकहि भोगत, जिय विधिवश पर्यो ॥

पर्यो विधिवश आन चेतन, आन जड जु कलेवरो ।
तन अशुचि परतें होय आस्रव, परिहरें तो संवरो ॥
निर्जरा तपबल होय, समकित, बिन सदा त्रिभुवन भ्रम्यो ।
दुर्लभ विवेक विना न कबहूँ परम धरम विषे रम्यो ॥१२॥

ये प्रभु बारह पावन, भावन भाइया ।
लौकांतिक वर देव नियोगी आइया ॥
कुसुमांजलि दे, चरन-कमल शिर नाइया ।
स्वयंबुद्ध प्रभु थुति करि, तिन समझाइया ॥

❀ श्री ज्ञान कल्याणक ❀

तेरहवें गुणथान, सयोगि जिनेसुरो ।
अनन्तचतुष्टयमण्डित, भयो परमेसुरो ॥
समवशरन तव धनपति, वहुविधि निरमयो ।
आगम जुगति प्रमान, गगनतल परिठयो ॥

परिठयो चित्रविचित्र मणिमय, सभामण्डप सोहिये ।
तिहं मध्य बारह बने कोठे, वंठ सुर-नर मोहिये ॥
मुनि कल्पवासिनि अरजिका पुनि, ज्योति-भौम-भुवनतिया ।
पुनि भवन व्यन्तर नभग सुर नर, पशुनि कोठे वैठिया ।१६॥

मध्यप्रदेश तीन, मणि-पीठ तहां बने ।
गंधकुटी सिंहासन, कमल सुहावने ॥
तीन छत्र सिर शोभित त्रिभुवन मोहिये ।
अन्तरीक्ष कमलासन, प्रभुतन सोहिये ॥

सोहए चौसठि चमर ढरत, अशोकतरु तल छाजये ।
धुनि दिव्यधुनि प्रतिशब्दजुत तहं, देवदुन्दुभि बाजये ॥
सुरपुहुपवृष्टि सुप्रभामण्डल, कोटि रवि छवि छाजये ।
इमि अष्ट अनुपम प्रातिहारज, वर विभूति विराजये ।।१७।।

सौ सौ योजन मान, सुभिच्छ चहुं दिशी ।
गगनगमन अरु प्राणिवध नहिं अहनिशी ॥
निरुपसर्ग निरहार, सदा जगदीस ये ।
आनन चार चहूँदिशि, शोभित दीसये ॥

सेमय अशेष विशेष विद्या, विभव वर ईसुरपनो ।
छाया बिवर्जित शुद्ध फटिक,-समान तन प्रभु को बनो ॥

गणिये अठारह दोष तिनकरि, रहित देव निरञ्जनो ।
नव परम केवललब्धि मण्डित, शिवरमणि मनरञ्जनो ॥
श्रीज्ञानकल्याणक सुमहिमा, सुनत सब सुख पावहीं ।
भणि 'रूपचन्द' सुदेव जिनवर, जगत मङ्गल गावहीं ।२१॥

卐

❀ श्री निर्वाण कल्याणक ❀

केवलदृष्टि चराचर, देख्यो जारिसो ।
भविजन प्रति उपदेश्यो जिनवर तारिसो ॥
भवभयभीत भविकजन, शरणै आइया ।
रत्नत्रय लच्छन, शिवपंथ लगाइया ॥

लगाइया पंथ जु भव्य फुनि, प्रभु तृतिय सुकल जु पूरियो ।
तजि तेरवाँ गुणथान योग, अयोग पथ पग धारियो ॥
पुनि चौदहें चौथे सुकलबल, बहत्तर तेरह हती ।
इमि घाति वसु विधि कर्म पहुँच्यो, समय में पंचम गती ॥२२॥

लोकशिखर तनुवात,—वलयमह संठियो ।
धर्मद्रव्य विन गमन न, जिहिं आगे कियो ॥
मयनरहित मूपोदर, अम्बर जारिसो ।
किमपि हीन निज तनु ते भयो प्रभु तारिसो ॥

तारिसो पर्जय नित्य अविचल, अर्थपर्जय क्षणक्षयी ।
निश्चयनयेन अनन्त गुण, विवहारनय वसु गुणमयी ॥
वस्तुस्वभाव विभाव विरहित, शुद्ध परणति परिणयो ।
चिद्रूप परमानन्द मन्दिर, सिद्ध परमातम भयो ।२३॥

किस मोह-निद्रा में सो रहे हो,
जागो कि मेरे परम सत्य प्यारे ॥१८॥

इस भांति दोनों नयन बन्द करके,
अपना भला तुम नहीं कर सकोगे ।
इस लोक में ही डगर बन गई तो,
उस लोक में तुम न डग धर सकोगे ॥१९॥

जिससे किसी का भला कुछ न होता,
वह भी कि कोई अरे जिन्दगानी ?
ऐसे पुरुष को धरा पर न रहती,
जीवित कभी शेष कोई कहानी ॥२०॥

इससे कि बहती हुई इस नदी में,
ऐ मित्र मेरे कि तुम हाथ धोलो ।
उस लोक को तुम चलो उसके पहिले,
कुछ पुण्य का साथ सम्बल संजोलो ॥२१॥

निर्मल रखो नित्य परिणाम अपने,
भौतिक सुखों से सजाओ न डेरा ।
संसार में तुम रहो इस तरह से,
जैसे कि जल में कमल का बसेरा ॥२२॥

इसके क्षितिज में नहीं टिमटिमाते,
भय शोक चिन्ता से ग्रस्त तारे ॥२७॥

●

इसमें विरह का धुआं है न कोई,
इसमें मिलन की न शहनाइयां हैं।
जिस ओर जाओ कि बहतीं दिखातीं,
सुख की सलोनी पुरवाइयां हैं ॥२८॥

●

इसमें नहीं मोह के ज्वार उठते,
जलती न इसमें क्रोधाग्नि-ज्वाला।
देखो जहां, है वहीं पर कि इसमें,
आनन्द से पूर्ण परिपूर्ण प्याला ।२९॥

●

वंशी बजाया करो मित्र मेरे,
तुम बस इसी पुण्य जमना किनारे।
किस मोह निद्रा में सो रहे हो,
जागो कि मेरे भगवान प्यारे ।३०।

●

ऐ स्वर्ग के दिव्य रंगीन पंछी,
यह ही तुम्हारा निराला नगर है।
जिस राह से है तुम्हें घर पहुंचना,
उसकी यही एक प्यारी डगर है ॥३१॥

●

* देव-अर्चना *

— दर्शन —

देव तुम्हारे कई उपासक कई ढंग से आते हैं।
सेवा में वहुमूल्य भेंट वह कई रङ्ग के लाते हैं॥

धूम धाम अरु साज बाज से मन्दिर में वह आते है।
मुक्तामणि बहुमूल्य वस्तुयें लाकर तुम्हें चढ़ाते है॥

मै ही हूँ गरीब इक ऐसा जो कुछ साथ नहीं लाया।
फिर भी साहस कर मन्दिर में पूजा करने को आया॥

धूप दीप नईवेद्य नहीं है, झांकी का सिगार नहीं।
और चढ़ाने को चरनों में फूलों का भी हार नहीं॥

किस विध स्तुति करूँ तुम्हारी है स्वर में माधुर्य नहीं।
मन का भाव प्रगट करने को वाणी में चातुर्य नहीं॥

नहीं दान अरु भेंट आदि है खाली हाथ चला आया।
पूजा की विधि नहीं जानता फिर भी नाथ चला आया॥

पूजा और पुजापा प्रभुवर इसी पुजारी को समझो।
दान दक्षिणा और निछावर इसी भिखारी को समझो॥

मैं उनमत्त भक्ति का लोभी हृदय दिखाने आया हूँ।
जो कुछ है बस यही पास है इसे चढ़ाने आया हूँ॥

चरणों में अर्पित है इसको चाहो तो स्वीकार करो।
यह तो वस्तु तुम्हारी ही है, ठुकरा दो या प्यार करो॥

(सच्चे देव का स्वरूप)

जो सर्वज्ञ शास्त्रका स्वामी, जिसमे नही दोष का लेश ।
वही आप्त है वही आप्त है, वही आप्त है तीर्थ जिनेश ॥
जिसके भीतर इन बातोंका, समावेश नही हो सकता ।
नही आप्त वह हो सकता है, सत्य देव नहिं हो सकता ॥५॥

भूख प्यास बीमारि बुढ़ापा, जन्म मरण भय राग द्वेष ।
गर्व मोह चिन्ता मद अचरज, निद्रा अरति खेद औ स्वेद ॥
दोष अठारह ये माने है, हो ये जिनमें जरा नही ।
आप्त वही है देव वही है, नाथ वही है और नही ॥६॥

सर्वोत्तम पदपर जो स्थित हो, परमज्योति हो हो निर्मल ।
वीतराग हो महाकृती हो, हो सर्वज्ञ सदा निश्चल ॥
आदिरहित हो अन्तरहित हो, मध्य रहित हो महिमावान ।
सब जीवों का होय हितैषी, हितोपदेशी वही सुजान ॥७॥

बिना रागके बिना स्वार्थके, सत्यमार्ग वे बतलाते ।
सुन सुन जिनको सत्पुरुषो के, हृदय प्रफुल्लित हो जाते ॥
उस्तादोके करस्पर्श से, जब मृदङ्ग ध्वनि करता है ।
नही किसी से कुछ चहता है, रसिकों के मन हरता है ॥८॥

(शास्त्र का लक्षण)

जो जीवो का हितकारी हो, जिस का हो न कभी खंडन ।
जो न प्रमाणो मे विरुद्ध हो, करता होय कुपथ खंडन ॥
वस्तुरूप को भलीभांति से, बतलाता हो जो शुचितर ।
वक्ता आप्तका शास्त्र वही है, शास्त्र वही है सुन्दरतर ॥९॥

(तपस्वी या गुरु का लक्षण)

विषय छोड़कर निरारम्भ हो, नही परिग्रह रक्खें पास ।
ज्ञान ध्यान तप में रत होकर, सब प्रकार की छोड़े आस ॥

उसे तोड़कर दूर फेकना, उपगूहन है पंचम अंग ।
इसे पाल निर्मल यश पाया, सेठ जिनेन्द्रभक्त सुख संग ॥१५॥

(स्थितिकरण)

सद्दर्शन से सदाचरण से, विचलित होते हों जो जन ।
धर्मप्रेमवश उन्हें करे फिर सुस्थिर, देकर तन मन धन ॥
स्थितीकरण नामक यह छट्ठा, अङ्ग धर्मद्योतक प्रियवर ।
वारिषेण श्रेणिक का बेटा, ख्यात हुआ चलकर इस पर ॥१६॥

(वात्सल्य)

कपट रहित हो श्रेष्ठ भाव से, यथायोग्य आदर सत्कार ।
करना अपने सधर्मियों का, सप्तमाङ्ग वात्सल्य विचार ॥
इसे पालकर प्रसिद्धि पाई, मुनिवर श्रीयुत विष्णुकुमार ।
जिनका यश शास्त्रो के भीतर, गाया निर्मल अपरंपार ॥१७॥

(प्रभावना)

जैसे होवे वैसे भाई, दूर हटा जग का अज्ञान ।
कर प्रकाश करदे विनाश मम, फैला दे शुचि सच्चा ज्ञान ॥
तन मन धन सर्वस्व भले ही, तेरा इसमें लग जावे ।
वज्रकुमार मुनीन्द्र सदृश तू, तब प्रभावना कर पावे ॥१८॥

सम्यग्दर्शन सुखकारी है, भवसन्तति इससे मिटती ।
अङ्गहीन यदि हो इसमें तो, शक्ति नहीं उतनी रहती ॥
विषकी व्यथा मिटा दे जैसी, शक्ति मन्त्र में है प्रियवर ।
अक्षर मात्राहीन हुए से, मन्त्र नहीं रहता गुणकर ॥१९॥

(लोकमूढ़ता)

[illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥

सुन्दर धर्माचरण किये से, कुत्ता भी सुर हो जाता ।
पापाचरण किये से त्यों ही, श्वान-योनि सुर भी पाता ॥
ऐसी कोई नही सम्पदा, जो न धर्म से मिलती है ।
सब मिलती है, सब मिलती है, सब मिलती है, मिलती है ॥२६॥

जिनके दर्शन किये चित्त मे, उदय नही होवे समभाव ।
जिनके पढने सुनने से नहि, उच्च चरित हो हो न सुभाव ॥
जिन्हे मान आदर्श चले से, सत्यमार्ग भूले पड जायँ ।
ऐसे खोटे देव शास्त्र गुरु, शुद्ध दृष्टि से विनय न पायँ ॥२७॥

ज्ञान शक्ति है ज्ञान बडा है, कोई वस्तु न ज्ञान समान ।
त्यों चारित्र बड़ा गुणधारी, सब सुखकारी श्रेष्ठ महान ॥
पर मित्रो, दर्शन की महिमा, इन सबसे बढकर न्यारी ।
मोक्षमार्ग मे इसकी पदवी, कर्णधार जैसी भारी ॥२८॥

सम्यग्दर्शन नही होय तो, ज्ञान चरित्र कभी शुभतर ।
फलदाता नहि हो सकते है, जैसे बीज विना तरुवर ॥
सम्यग्दर्शन विना ज्ञान को, मित्रो समझो मिथ्याज्ञान ।
वैसे ही चारित्र समझ लो, मिथ्याचरित सकल दुखखान ॥२९॥

मोह रहित जो है गृहस्थ भी, मोक्षमार्ग-अनुगामी है ।
हो अनगार, न मोह तजा तो, वह कुपथ का गामी है ॥
मुनि होकर भी मोह न छोडा, ऐसे मुनि से तो प्रियवर ।
निर्मोही हो गृहस्थ रहना, है अच्छा उत्तम बहुतर ॥३०॥

[illegible] वर्तमान ये, कहलाते है तीनों काल ।
देव नारकी और मनुज ये, तीनो जग है महा विशाल ॥
[illegible] काल त्रिजग मे नहि है, सुखकारी सम्यक्त्व समान ।
[illegible] नहि मिथ्यात्व सदृश है, दुखकारक [illegible] ॥३१॥

दूसरा परिच्छेद

(सम्यग्ज्ञान का लक्षण)

वस्तुरूप को जो बतलाये, नीके न्यूनाधिकताहीन ।
ठीक ठीक जैसे का तैसा, अविपरीत सन्देहविहीन ॥
गणधरादि आगम के ज्ञाता, कहते इसको सम्यग्ज्ञान ।
इसको प्राप्त कराने वाले, कहे चार अनुयोग महान ॥३७॥

(प्रथमानुयोग)

धर्म अर्थ त्यों काम मोक्ष का, जिसमें किया जाय वर्णन ।
पुण्यकथा हो चरित-गीति हो, हो पुराण का पूर्ण कथन ॥
रत्नत्रय औ धर्मध्यान का, जो अनुपम हो महानिधान ।
कहलाता प्रथमानुयोग है, यों कहता है सम्यग्ज्ञान ॥३८॥

(करणानुयोग)

लोकालोक विभाग बतावे, युगपरिवर्तन बतलाता ।
वैसे ही चारों गतियों को, दर्पण सम है दिखलाता ॥
है उत्तम करणानुयोग यह, कहता है यों सम्यग्ज्ञान ।
इसे जानने से मानव कुल, हो जाता है बहुत सुजान ॥३९॥

(चरणानुयोग)

गृहस्थियों का अनगारों का, जिसमें चारित हो उत्पन्न ।
बढ़े और रक्षा भी पावे, है चरणानुयोग प्रतिपन्न ॥
मित्रो ! इसका किये आचरण, चरित्रगठन हो जाता है ।
इससे हुई समुन्नति अपनी, जीव महासुख पाता है ॥४०॥

(द्रव्यानुयोग)

जीव तत्त्व का स्वरूप दिखा, दिखा है अजीव का तत्त्व ।
[illegible] पुण्य का [illegible] स्वरूप है, बन्ध मोक्ष [illegible] तत्त्व ॥
इन सबको द्रव्यानुयोग [illegible] दीप [illegible] दिखलाता ।
[illegible] ॥४१॥

इसी अणुव्रत के पालन से, जाति पाँति का था चंडाल ।
तो भी सब प्रकार सुख पाया, कीर्तिमान् होकर यमपाल ॥
नही पालने से इस व्रत के, हिंसारत हो सेठानी ।
हुई धनश्री ऐसी जिसकी, दुर्गति नहि जाती जानी ॥४७॥

(सत्य)

बोले झूठ न झूठ बुलावे, कहे न सच भी दुखकारी ।
स्थूल झूठ से विरक्त होवे, है सत्याणुव्रतधारी ॥
निंदा करना, धरोड़ हरना, कूटलेख लिखना परिवाद ।
गुप्त बात को जाहिर करना, ये इसके अतिचार प्रमाद ॥४८॥
इस व्रत के पालन करने से, पूज्य सेठ धनदेव हुआ ।
नही पाल मिथ्यारत होकर, सत्यघोष त्यो दुखी मुआ ॥
मिथ्या वाणी ऐसी ही है, सब जग को संकटदाई ।
इसे हटाओ, नही लडाओ, समझाओ सबको भाई ॥४९॥

(अचौर्य)

गिरा पड़ा भूला रक्खा त्यो, बिना दिया परका धन मार ।
लेना नही, न देना परको, है अचौर्य, इसके अतिचार ॥
माल चौर्यका लेना, चोरी ढँग बतलाना, छल करना ।
माल मेल मे नाप तोलमे, भंग राजविधि का करना ॥५०॥
इस व्रत को पालन करने से, वारिषेण जग मे भाया ।
नही पालने से दुख-बादल, खूब तापसी पर छाया ॥
जो मनुष्य इस व्रत को पाले, नही जगत मे क्यो भावे ।
क्यो नहि उसकी शोभा छावे, क्यो न जगत सब जग गावे ॥५१॥

(ब्रह्मचर्य)

[illegible] को [illegible] मे, नहीं गमन जो करना है ।
[illegible] प्रवृत्त न करना है ॥

ऐसी कर मर्यादा आगे, कभी उमर भर नहिं जाना ।
सूक्ष्म पाप नाशक दिग्व्रत यह, इसे सज्जनों ने माना ॥५७॥
जो इस व्रत का पालन करते, उन्हें नही होता है पाप ।
मर्यादा के बाहर उनके, अणुव्रत होय महाव्रत आप ॥
प्रत्याख्यानावरण बहुत ही, मित्रो कृशतर हो जाते ।
उसने कर्म चरित्र-मोहनी, मन्द मन्दतर पड़ जाते ॥५८॥

(महाव्रत)

तन मन वचन योगसे मित्रो, कृत कारित अनुमोदन कर ।
होते हैं नौ भेद, इन्ही से, तजना पांचों पाप प्रखर ॥
कहे जगतमे ये जाते हैं, पञ्च महाव्रत सुखकारी ।
बहुत अंशमें महाव्रतीसा, जो जाता दिग्व्रतधारी ॥५९॥
दशो दिशा की जो मर्यादा, की हो उसे न रखना याद ।
भूल भाल उसको तज देना, या तज देना धार प्रमाद ॥
ऊँचे नीचे आगे पीछे, अगल बगल मित्रो बढना ।
दिग्व्रत के अतिचार कहाते, याद न मर्यादा रखना ॥६०॥

(अनर्थदण्डविरति)

दिग्मर्यादा जो की होवे, उसके भीतर भी बिन काम ।
पापयोग से विरक्त होना, है अनर्थ दण्डव्रत नाम ॥
हिंसादान प्रमादचर्या, पापोदेश-कथन अपध्यान ।
[illegible] दुःश्रुति पाचो ही ये, इस व्रत के हैं भेद सुजान ॥६१॥

(हिंसादान)

छुरी कटारी [illegible] [illegible], अन्यायुध फरसा तलवार ।
[illegible] [illegible] [illegible] का देना, जिनसे होवे वार ॥
[illegible] [illegible] [illegible] मित्रो, कहलाता है अनर्थदण्ड ।
[illegible] [illegible] [illegible] है, जो नहिं होवे कुछ [illegible] ॥६२॥

(भोगोपभोग परिमाण)

इन्द्रिय विषयों को प्रतिदिन ही, कम कर राग घटा लेना ।
है व्रत भोगोपभोग परिमित, इसकी ओर ध्यान देना ॥
पंचेन्द्रिय के जिन विषयो को, भोग छोड़दें वे है भोग ।
जिन्हें भोगकर फिर भी भोगें, मित्रो वे ही हैं उपभोग ॥६८॥

त्रस जीवो की हिंसा नहिं हो, होने पावे नही प्रमाद ।
इसके लिये सर्वथा त्यागो, माँस मद्य मधु छोड़ विषाद ॥
अदरख निम्ब पुष्प बहु बीजक, मक्खन मूल आदि सारी ।
तजो सचित चीजें जिनमे हो, थोडा फल हिंसा भारी ॥६९॥

जो अनिष्ट है सत्पुरुषों के, सेवन योग्य नही जो है ।
उन विषयो को सोच समझकर, तज देना जो व्रत सो है ॥
भोग और उपभोग त्याग के, बतलाये यम नियम उपाय ।
अमुक समय तक त्याग 'नियम' है, जीवनभरका यम कहलाय ॥७०॥

(नियम करने की विधि)

भोजन वाहन शयन स्नान रुचि, इत्र पान कुंकुम-लेपन ।
गीत वाद्य संगीत कामरति, माला भूषण और वसन ॥
इन्हें रात दिन पक्ष मास या, वर्ष आदि तक देना त्याग ।
कहलाता है 'नियम' और 'यम', आजीवन इनका परित्याग ॥७१॥

(भोगोपभोग परिमाण के अतिचार)

विषय विषों का आदर करना, भुक्त विषय को करना याद ।
वर्तमान के विषयों में भी, रचे-पचे रहना अविषाद ॥
आगामी विषयों में रखना तृष्णा या लालसा अपार ।
बिन भोगे विषयों का अनुभव करना, ये भोगातिचार ॥७२॥

(दान के भेद)

भोजन, भेषज, ज्ञान-उपकरण, देना और अभय आवास ।
चार ज्ञान के धारी कहते, दान यही है चारों खास ॥
इनके पालन करने वाले, श्रीषेणीराज वृषभसेना ।
कोतवाल कौण्डीशव शकर, हुए प्रसिद्ध समझ लेना ॥८९॥

(देवपूजा)

प्रभु पद काम दहनकारी है, वाञ्छित फल देने वाले ।
उनका प्रतिदिन पूजन करिये, वे सब दुख हरने वाले ॥
जिनपूजा को एक पुष्प ले, मेंडक चला मोद धरके ।
मुआ मार्ग मे हुआ देव वह, महिमा महा प्रगट करके ॥९०॥

(वैयावृत्य या दान के अतिचार)

हरे पत्र के भीतर रखना, हरे पत्र से ढक देना ।
देने योग्य भोजनादिक को, पात्र अनादर कर देना ॥
स्मरण न रखना देने की विधि, अथवा देना मत्सर कर ।
है अतिचार पाँच इस व्रत के, इन्हे सर्वथा तू परिहार ॥९१॥

छट्ठा परिच्छेद

(सल्लेखना)

आ जावें अनिवार्य जरा, दुष्काल, रोग या कष्ट महान ।
धर्म हेतु तब तनु तज देना, सल्लेखना मरण सो जान ॥
अन्त समय का सुधार करना, यही तपस्या का है फल ।
[illegible] समाधि मरण हित भाई, करने रहो प्रयत्न सकल ॥९२॥

सातवां परिच्छेद

卐

ग्यारह प्रतिमा

(दर्शनप्रतिमाधारी)

ग्यारह पद होते श्रावक के, प्रति पदमें पहले गुणयुत ।
अपने गुण मिल होय पूर्णता, यों बुध कहे सुमति संयुत ॥
तत्त्व पथिक है शुचिदर्शन है, भव–तनु–भोगविरागी है ।
परमेष्ठी पद शरणगत है, दर्शनप्रतिमाभागी है ॥९९॥

(व्रतप्रतिमाधारी)

पाँच अणुव्रत सात शील जो, निरतिचार सुख से धरता ।
शल्य रहित व्रतप्रतिमाधारी, व्रतियों मे माना जाता ॥
शिक्षाव्रत है चार बताये, तीन गुणव्रत उपकारी ।
ये सातों मिल शील कहाते, इन्हे धरे व्रत का धारी ॥१००॥

(सामायिक प्रतिमाधारी)

तीन बार करके आवर्तन, चार दिशा में चार प्रणाम ।
करे, परिग्रह सारे तज दे, धर ले कायोत्सर्ग ललाम ॥
खड्गासन या पद्मासन धर, होकर मन वच तनसे शुद्ध ।
करे वन्दना तीन काल मे, सामायिकधारी सो बुद्ध ॥१०१॥

(प्रोषधधारी और सचित्तत्यागी)

चारों पर्वों मे हर महिने, धर्मध्यान मे रत रहकर ।
[illegible] दिन प्रोषधसा, नियम करे वे 'प्रोषध-धर' ॥
जो नहिं [illegible] कच्चे फल, दल, शाखा पुष्प बीज कच्चे ।
[illegible] सचित्तत्यागी-प्रतिमाधारी, [illegible] सच्चे ॥१०२॥

है दर्शन चारित्र ज्ञान ये, तीनों रत्न बड़े सुन्दर ।
रत्नकरण्ड बनाते हिय को, जो जन धरे इन्हें शुचितर ॥
भली भांति पुरुषार्थ सिद्धि हो, उनके चरणों की दासी ।
बरती है बन पतिव्रतासी, देती है यों सुख राशी ॥१०८॥

कामी को ज्यों सुख देती है, रमणी त्यों सुख दो मुझको ।
माता लाड़ लड़ाती सुतको, वैसे लाड़ करो मुझको ॥
ज्यो पवित्र करती है कुल को, अति पवित्र सुगुणा कन्या ।
करो मुझको पावन वैसे ही, सम्यग्दर्शन श्री धन्या ॥१०९॥

❊ समाप्त ❊

(५)

जिनके सदुपदेश रूपी रतन को, धरते जतन से वही भाग्यशाली।
जो साधना की सुघड़ वाटिका के, होते कुशल दक्ष परिपूर्ण माली॥
ऐसे पुरुष भी पतित-संग पाकर, उस रत्न को पास रखने न पाते।
दुर्जन सहित नाव में बैठकर वे, निज साथियों के सहित डूब जाते॥

(६)

कहते जिसे विज्ञजन मन कि विज्ञों, वह अंत मे है कि मन ही हमारा।
उसके अशुभ संग में पड़ कि प्राणी, जिन बैन से भी कि करता किनारा॥
पर भेद-विज्ञान के कोष हैं जो, जो जानते हैं कि मन की कहानी।
वे प्राण से भी कि बढ़कर हृदय में, रखते संजोये कि जिनराज वाणी॥

(७)

जिनके स्वभावो मे नित छलकती, अमृतमयी ज्ञान की रे गगरिया।
वे जानते हैं कि क्या है अशुभ ज्ञान रे, ज्ञान की कौनसी है डगरिया॥
पूछो कि उनसे, वे बस कहेंगे, जिनके निकट शेष विज्ञान धन है।
भव्यो हमारा वही आत्मा ही, परमात्मा है, आनन्दघन है॥

(८)

जिन बैन वह रत्न चिन्तामणी है, वांछित फलो की जो झड़ लगाता।
शुचि शुद्ध दर्शन का कोष है वह, तीनो भुवन का आनन्द दाता॥
विज्ञान उसमें कि किल्लोल करता, वह ज्ञान का है कि पावन किनारा।
चारित्र का कुंज है वह निराला, बहती तपों को जहाँ पुण्यधारा॥

(९)

[illegible] वही है जिनको कि मन है, पर मन कि क्या है? यह वह विधाता।
[illegible] कारण कि जिसका निर्माण, मानव सदा नर्क में ठौर पाता॥
[illegible] सुसंस्कृत है, निर्मल अपने कि मन को बनाते।
[illegible] कि [illegible], परमात्मा की परम ज्योति पाते॥

(१५)

गुरुदेव संसार के प्राणियों को, त्रैलोक्य का नित दर्शन कराते ।
वे मन वचन काय के हो विजेता, नित आतमा के मधुर गीत गाते ॥
संसार के चर अचर प्राणियों मे, घट घट भरे जो कि अनुपम खजाने ।
वे गुप्ततम राह उनकी बताते, उनको न अपने न कोई विराने ॥

(१६)

सद्गुरु जिन्हें विज्ञ कहते जगत में, होते कि वे दिव्यतम दृष्टिधारी ।
वे सूक्ष्म से सूक्ष्मतम कर्म दल की, उन्मूल करते वृहत् सृष्टिधारी ॥
जिनका कि उपदेश पाकर हृदय मे, रहने न पाता मलों का बसेरा ।
मिथ्यात्व, कुज्ञान, शल्ये वहाँ, अपना हटाती कि अवि डेरा ॥

(१७)

कहते जिन्हे विज्ञजन है परमगुरु, वे आतम का ही गुणगान करते ।
जो बोल उनके धरा पर उतरते, उनसे कि अध्यात्म के फूल झरते ॥
आकाश के तुल्य निस्सीम होता, गुरुदेव का ज्ञान कल्याणकारी ।
अज्ञान को वे उसी भाति हरते, जैसे तिमिर को सहस रश्मिधारी ॥

(१८)

तारणतरण गुरु परम शुद्ध दृष्टी, जो भी वचन है धरा पर बिछाते ।
वे ज्ञान आनन्द के निर्झरो मे ही, नित्य किल्लोल करते दिखाते ॥
गुणगान के ये परम बोल सुन्दर, सम्यक्त्व से पूर्ण करते हिये है ।
जिनमे समय पा कि दीपावली मे कैवल्य के जाग जाते दिये है ॥

(१९)

गुरुदेव के बोल अन्तरपटल मे, सम्यक्त्व का एक अंकुर लगाते ।
मिथ्यात्व [illegible] [illegible] पौधे, उस क्षेत्र मे फिर पनपने न पाते ॥
[illegible] का पूर्ण सहयोग पाकर, यह ज्ञान विज्ञान वन लहलहाता ।
[illegible], जग [illegible] के [illegible] दर्शन कराता ॥

(२५)

यह धर्म ही है त्रिभुवन तली मे, सत्यम् शिवम् सुन्दरम् सौख्यकारी ।
जो चार गतियों मे नित भ्रमाता, उस कर्म का बस यही ध्वंशकारी ॥
इस धर्म की हो सुखद अर्चना से, यह जीव अपना परमरूप पाता ।
इस धर्म को जो लगाता, हृदय से वह कर्म के पाप से छूट जाता ॥

(२६)

इस धर्म का हार धारण किये से, सब कर्म, निष्प्राण हो सूख जाते ।
इस धर्म की पूर्ण सहकारिता पा, चैतन्य प्रभु नित नई ज्योति पाते ॥
संसार के प्राणियों को सदा हो, यह धर्म उपकार अमृत पिलाये ।
इससे कि त्रैलोक्य को यह उचित है, वह धर्म से नित्य नेहा लगाये ॥

(२७)

चैतन्य से पूर्ण इस आतमा मे, यह धर्म माणिक्य सा जगमगाये ।
वसुकर्म जो जीव को नित सताते, यह धर्म उनसे हमें नित छुड़ाये ॥
विज्ञान इसका परम श्रेष्ठ धन है, है यह सहज ही कि आनन्ददाता ।
जो धर्म की नाव मे बैठ जाता, वह नर निसंशय कि निर्वाण पाता ॥

(२८)

स्वर और व्यंजन अक्षर कि जितने, जब तक कि अक्षर, अक्षर कहाते ।
पर ज्ञानकी रश्मियों मे नहाकर, वे वज्र ज्ञानों की कोटि पाते ॥
इन अक्षरों मे का एक अक्षर, हो यदि हृदय में कहीं बैठ जाता ।
तो वह हृदय फिर हृदय रह न पाता, वह ज्ञान हो ज्ञान को जगमगाता ॥

(२९)

इन अक्षरों से ही है उपजती, मतिज्ञान की सृष्टि सुन्दर निराली ।
[illegible] कि [illegible] यह श्रुति प्रतिभेद सद्ज्ञान की पूर्ण प्याली ॥
[illegible] महिमा को, बुधजन कि जब ग्रन्थ मे [illegible] ।
[illegible] उस जीव [illegible] धर्म [illegible] ॥

(३६)

जो है सशंकित, जो भय सहित है, या जो विभावों का है बसेरा ।
ऐसे हृदय में प्रिय शास्त्र लाते, सम्यक्त्व का एक क्षण में सबेरा ॥
जो नर निरन्तर स्वाध्याय करते, मिथ्यात्व में वे कभी भी न खोते ।
परमात्मा को नही ढूंढते वे, वे बस उन्हीं मे कि साकार होते ॥

(३७)

जो नर निरन्तर स्वाध्याय करते, उनके कषायें नहीं पास आती ।
परद्रव्य की काजल सरीखी, उनको नही स्वप्न तक में सुहाती ॥
उनके नयन में नित शुद्ध से शुद्ध, शुद्धात्मा ही दिखता निराला ।
वे नित्य अपने मे मग्न होकर, पीते चिदानन्द का शुद्ध प्याला ॥

(३८)

स्वाध्याय मे जो पुरुष लीन रहते, वे नर न ससार मे फिर भटकते ।
संसार के द्रव्य सारे अहितकर, उनको नही शूल से फिर खटकते ॥
ससार के कार्य मे मुक्त होकर, वे शेष जितना अवकाश पाते ।
उसको कि वे ज्ञान का आसरा ले, निज आत्म के ही रमण मे बिताते ॥

(३९)

स्वाध्याय का सूर्य अतस्तली में, जो ज्ञान है नित उसे जगमगाता ।
यह ज्ञान विज्ञान मे है बदलता, कैवल्य को फिर यही जा जगाता ॥
स्वाध्याय मे आत्म का बोध होता, छटते कि जिससे कि मल कष्टकारी ।
[illegible] मलों से, आत्मा फिर, बनता परमब्रह्म आनन्दधारी ॥

(४०)

[illegible] विज्ञान के अक्षरों से, जो बोध है शुद्ध सुन्दर निराले ।
[illegible], नितप्रति पिते ज्ञान से पूर्ण प्याले ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥

तारण तरण समर्थ मुनि, भवि संसार निवार ॥२॥ टेक

धर्म जो उत्तो जिनवरहि, अर्थति अर्थ संजोय ॥
भय विनाश भव्य जु मुनहु, ममल न्यान परलोय ॥३॥ टेक

●

卐 समोसरन फूलना 卐

(चाल-टूटक झडप की)

मैं तो आयो आयो आयो हो, अपने देव जू के वन्दन को ॥टेक

आकाश लोक से इन्द्र जो आये, ऐरावत सज लाए हो ॥
सज लाए हो ॥ अपने

पाताल लोक से फणिन्द्र जो आए, फन पर नृत्य कराये हो ॥
कराये हो ॥ अपने

मध्य लोक से चक्रवर्ती जो आये, चवर सिंहासन लाये हो ॥
लाए हो ॥ अपने

दसहू दिशा से दिगपाल जो आए, आनंद उमंग बढ़ाये हो ॥
बढ़ाए हो ॥ अपने

चन्द्र सूर्य राजा श्रेणिक आए, जय जय शब्द कराए हो ॥
कराए हो ॥ अपने

●

卐 अचरी फूलना 卐

(चाल-लंगड़ी एक पदी)

अहो या समव, अहो या समवशरण, जिनवर जू की महिमा
पार न पावे कोय ॥टेक॥

अहो [illegible] चारि, अहो [illegible] चारि, ज्ञान के धरिता गणधर,
पार न पावे कोय ॥[illegible]॥

卐 भजन 卐

(चाल-गुरु हिडोरनी की)

मोरो मोरो स्वामी के दरबार, मोरो,ऐसे संमकित्त अमुला मोरीयो ॥टेक॥
स्वामी एक स्वरूप विचारिके ।
अव जे दुनिया मन दूरि कराव, ऐसे संमकित्त अमुला मोरीयो ॥टेक॥
स्वामी तीन ही रत्न बिचारिके ।
अव जे चारों कपाय निबारि, ऐसे सम्यक्त्व अमुला मोरीयो ॥टेक॥
स्वामी पांचों इन्द्री जीति के ।
अव जे छटा से नेह तजाव, ऐसे सम्यक्त्व अमुला मोरीयो ॥टेक॥
स्वामी सात ही विशन निवारिके ।
अब जे मद आठ ही तजाव, ऐसे सम्यक्त्व अमुला मोरीयो ॥टेक॥
स्वामी नवधा भक्ति प्रमाण के ।
अब जे दश विधि धर्म कराव, ऐसे सम्यक्त्व अमुला मोरीयो ॥टेक॥
स्वामी ग्यारह प्रतमा पाल के ।
अब जे मन वारह वृत कराव, ऐसे सम्यक्त्व अमुला मोरीयो ॥टेक॥
स्वामी तेरह काठिया टारिके ।
अव जे चौदह गुणस्थान कराव, ऐसे सम्यक्त्व अमुला मोरीयो ॥टेक॥
स्वामी पन्द्रह नो प्रमाणके ।
अब जे सोलह कारण कराव, ऐसे सम्यक्त्व अमुला मोरीयो ॥टेक॥
स्वामी जे सतरह नियम विचारिके ।
अब जे अठारह मन दोष तजाव, ऐसे सम्यक्त्व अमुला मोरीयो ॥टेक॥
स्वामी जू इतने गुण गायके ।
अब जे चौबीस ही प्रभुके गुण गाय, ऐसे सम्यक्त्व अमुला मोरीयो ॥टेक॥
मोरो मोरो स्वामी के दरबार ।

●

卐 भजन 卐

(चाल-विलवारी की)

डूबो डूबो मोह की धार, स्वामी जो अबकी वेर उवारीयो ॥टेक

जिया पर चोरो और एक जुंवा, या बात बिरानी न होय ॥
स्वामी जो अबकी वेर उवारीयो ॥

जिया पर त्रिया मत राचहु, तेरे जियको हतन हो जाय ॥
स्वामी जी अबकी वेर उवारीयो ॥

जिया जैसा है मोती ओस को, और जैसो है खलक जहांन ॥
स्वामी जी अबकी वेर उवारीयो ॥

जिया देखत को मोती बनो, और पवन लगे ढल जाय ॥
स्वामी जी अबकी वेर उवारीयो ॥

जिया काम क्रोध की झार में, और जर गये जो अज्ञान ॥
स्वामी जो अबकी वेर उवारीयो ॥

जिया संत पुरुष कोई भग बचे, वह तो पोहुंचे हैं पद निर्वाण ॥
स्वामी जी अबकी वेर निवारीयो ॥

卐 जिनेली फूलना 卐

(चाल-तत्वसार तथा भजनों के)

तुम घर ये अब तुम आनंद, बधाये हो म्हारा देव जी ।
स्वामी जी सतगुरु-साहबा ॥टेक॥

स्वामी जी जिनंद जिनेली में वई, स्वामी जी जिन उत्पन्नो है जोग ।
स्वामी जी सतगुरु-साहबा ॥टेक॥

जिनेंदा लोगे विगसत है, अलग [illegible] जिन ओ तो ।
स्वामी जी सतगुरु-साहबा ॥टेक॥

卐 भजन 卐

(चाल-एक पदी टेर की)

छांड़ दे अभिमान, जियारे ! तू छांड़ दे अभिमान ॥टेक॥
कहां को तू है कौन है तेरो, ये सब ही मेहमान ॥जियारे॥
तेरे देखत सब ही चल जैहैं, थिर नाही जा थान ॥जियारे॥
काम क्रोध हृदय से त्यागो, दूर करो अग्यान ॥जियारे॥
त्याग करो जा लोभ माया, मोह मदिरा को पान ॥जियारे॥
राजा रंक सब ही चल जैहैं, देखत तेरे नैन ॥जियारे॥
कहैं देवीदास आस जा पद को, आतम को पहचान ॥जियारे॥

卐 भजन 卐

(चाल-चौपदी)

प्रगटे तारण तरण स्वरूप,
हमारे गुरु ॥ टेक ॥
पंचम काल महादुख दायक,
मिथ्या भ्रम को कूप ॥ १ ॥
समकित डोर गहाई दया करि,
तीन जगत को भूप ॥ २ ॥
तिमिर विनाशी ज्योति प्रकाशी,
दर्शी रतन अनूप ॥ ३ ॥
प्रेम प्रीति सो भज मन मेरे,
चिदानन्द सुखरूप ॥ ४ ॥
प्रगटे तारण तरण स्वरूप,
हमारे गुरु ॥ पूर्ण ॥

卐 भजन 卐

(चाल-एकपदी टेर की)

मगन रहो रे जिया ! ले जिन नाम मगन रहो रे ॥टेक॥

कोई भयो राजा कोई भयो रंक,
कोई भयो जोगिरा भ्रमें चारों खंड ॥१॥

तन भयो राजा मन भयो रंक,
जीव भयो जोगीरा भ्रमें चारों खंड ॥२॥

समवशरण जहां रचो है कुवेर,
द्वादश कोठा वेदी के फेर ॥ ३ ॥

ता थैई ता थैई ता थैई तास,
कमल की पंखड़ी में नाचे देवीदास ॥४॥

मगन रहो रे जिया ! ले जिन नाम मगन रहो रे ॥पूर्ण॥

卐 भजन 卐

(चाल-राग बिलवारी)

मोह मिलके बिछुड़ मत जाव, कहो स्वामी केवल कबै मिलहों ॥टेक॥

स्वामी एक रूप हृदय धरो, दुबधा मन दूरि भगाव ।
स्वामी तीन रतन हृदय धरो, चारों कषाय निवारि ।
स्वामी पाचों इन्द्री बस करो, छटे मन राखो धीर ।
स्वामी सात विषन को त्याग के, आठों मद मम कर्म खिपाय ।
स्वामी नवधा भक्ति हृदय धरो, अरु दश विधि धर्म दिढाय ।
स्वामी ग्यारह प्रतिमा धारिके, बारह तप के व्रत कराय ।
स्वामी तेरह विधि संयम आदरें, जब मिल है केवल जिनराय ॥

卐 आगोनी 卐

(च.   गोनी की)

स्वामी मेरे, जिन यति जिनाया ऊंवन जिन ऊंवनों
ये ऊंवा ऊंवान ऊंवा ऐसा है ॥ अचरी ॥
स्वामी जिन जय वन्दो, जिनय जय ऊंवनो ।
रमण जय जय हो, जिनय सीहँ स्वामी ॥टेक॥
रंज रमन सोई, ऊंवन रमन जिन ।
जय जय अलख अलख, सोई अलख रमन जिन ।
जय जय अलख विन्दु अविनाशी ।
स्वामी अलख रमन सोई, अलख समय जिन ।
जय जय शब्द प्रियो जिनयों ताह ।
स्वामी जिन जय मिलहो, केवल जय मिल हो ,
जय जय हिय ऊंवा ऊंवन उपदेशा है ॥स्वामी॥
जय जय आसन ऊंवन सिंघाशा है ॥स्वामी॥
जय जय दिप्त देव परमेशा है ॥स्वामी जिन॥
जय जय अपनै देव गुरु वन्दिये ॥टेक॥
स्वामी जिनय जय मिलहो, केवल जय मिलहों ।

●

卐 आगोनी 卐

(चाल-आगोनी की दूसरी)

जिन जिन यति जिनय जिनँदु, जिनय यो जिनय भो ॥टेक॥
जिन जिनसो कम्म अनन्तु, रमन्ह म्हँई परम पो ॥१॥
तुम ज्ञानी हो तें समर करिर जिन आयो, ज्ञान रम रमन पो ॥२॥

ऐसो ना हू है, ऐसो ना है।
सांचे देव मिल जे तारो जिना ॥
ऐसो समय न बारम्बार, प्यारो स्वामिया हो ॥टेक॥
अब चौसंघ विराजे म्हारा देव, प्यारो स्वामिया हो।
ऐसे ऋषि यति मुनि अनगार, प्यारो स्वामिया हो।
अब ऐसे गुरु पर चंवर ढुराव, प्यारो स्वामिया हो।
ऐसे गुरु पर छत्र तनाव, प्यारो स्वामिया हो।
अब ऐसो समय सदा नित होय, प्यारो स्वामिया हो।
ऐसी गोंठ चली निर्वाण, प्यारो स्वामिया हो।
जासे आवागमन न होह, प्यारो स्वामिया हो।
अब गुरु देत मुकति परसाद, प्यारो स्वामिया हो ॥

●

卐 आरती 卐

(चाल-मंगल आरती की)

[१]

जय जय नंत दिप्तजू की आरती, अहो देव दिप्तजू की आरती ॥टेक॥
अहो ! आनो विघकार आनो--भाव सजोय।
जय जय विमल स्वभाव उपजो, अहो, उपजो है निरमल ज्ञान।
अहो ! तारण तरण प्यारी आरती।
ऐसी आरती अपने देवजू की कीजे, अहो आरती गुरु निर्गंथको कीजे।
(अद्द) अहो ! देव प्रसाद तत्क्षण लीजे ॥
गुरु प्रसाद समय को दीजे।
जय जय भली आरती इन्द्र प्रचारो ॥
जय जय सुरत-मणि विधि मन ही सम्हारो।
जय जय सोने के थार मोतिन के पुंजा ॥

ऐसे गुरु पर छत्र तनाव, आज देवजू को मंगल है।
ऐसो समय न वारम्बार, आज देवजू को मंगल है।
ऐसी रात्रि भई निर्वाण, आज देवजू को मंगल है।
मोरे स्वामी हैं दाता देव, आज देवजू को मंगल है।
स्वामी देत मुकति परसाद, आज देवजू को मंगल है॥

●

卐 भजन 卐

(चाल–आगमन की)

ये मोहे प्यारो ये मोहे प्यारो, लागे स्वामिया हो ॥टेक॥
श्री तार कमल उत्पन्न रमन तेरे चरण कमल बल जांव हो।
तेरी परम सुहागल आतमा, तू तो कर ले जप तप वृत सों प्रीति हो।
ये मोहे कर्म न छोड़े बावरे, मैं तो कैसे के सिवपुर जांव हो।
ये मोहे ले चलो पद निर्माण को, जहाँ अनहद धुनि गहराय हो।
ये मोहे ले चलो पद निर्माण को जहाँ कटत जनम २ के पाप हो
ये मोहे प्यारो ये मोहे प्यारो, लागे स्वामिया हो ॥टेक॥

卐 राग धुरपद–बसंत 卐

आई सुखदायक ऋतु बसंत, मिल खेलें फाग जो साधु संत ॥टेक॥
मोरी इक उर मेंम आंम डार, नम यत्र भये वैराग्य भाव।
जहां बसन्त बेल कीनो विस्तार, मन मधुकर होय कीनो गुंजार ॥१॥
जहां ज्ञान भाण को बढ्यो है घाम, ममता हेमता गल गयो है ताम।
समकित सरिता को बढ्यो है जोर, वह चली सुख सागर की ओर।
जहां सुमत सुहागन करि श्रृंगार, मन मग मग्ना लिए बहु प्रकार।
उरतोग कुसुम फल्यो है सुरग, जहा निगट भये अज्ञान राग ॥टेक॥

बुलाये के दुरजन सौप दिये, जल वोरो अगम अथाई ।
जहां जहां प्रभु को वोरन लागे, सुर रचे हैं सिंघासन आई
वेद पुराणों में मुनियत है, गुरु तारण तरणि अचारी ।
जे जे लागे तुम्हरे नाम से, हो गये भवदधि पारी ॥४॥

卐 ढार फाग में होली की 卐

जिय आतम रस खेलें होरी, जिय आतम रस खेलें होरी ॥टेक॥
कुमति नार संग लागो वो तो, चहुं गति में भटकावे फिरे फिरी ।
इन्द्री मन भुकरावे वो तो, भवदधि पार न पावे चित्त चोरी ।१।
हिय सुमति प्रीति ल्यावे वो तो, कुमति को मूल नसावे हित जोरी ।
जिय वाजे ध्यान मृदग वो तो, अनहद ध्वनि सुर तावे लागी डोरी ।२।
समकित केशर घोरी वो तो,संजम पिचकारी कर जोरे शोल चर चौरी
कहें जिनदास करि जोरी वो तो—
भव खेलत जा होरी मिटै जग फेरी ।३।
हो जिय आतम रस खेलें होरी ॥टेक॥

卐 ढार-फाग में रसिया की 卐

वेदी वाले तेरो नाम मिरे जग में ॥टेक॥
काहे की जा वेदी बनाई, काहे की ध्वजा फहराई कल में ।टेक।
सोलह खम्भ की वेदी बनाई धर्म ध्वजा फहराई कल में ।
तुम्हरो नाम तारण तरनाई, मो तो तार के पार लगावे पल में ।
कहत "[illegible]" अविचल गाई, चौदह ग्रन्थ रचे थल में ॥

झुनागढ़ चूनर ऊपजे, गिरनारी की हाट विकाय ।
राजुल चूनर ओढ़ियो, स्वामी नेमजो चुका दिये ।

卐 फाग-३ 卐

मन मोजी वैरागी आयो ना ।।टेक।।
काहे की गुदरी काहे को घागा, काहे को सूजा चलायो ना ।टेक।
मन की गुदरी सूरत को घागा ग्यान को सूजा चलायो ना ।
मन मोजी वैरागी आयो ना ॥

卐 राग-साऊन 卐

सुनियो संत सुजान, गगनमण्डल बाजी बांसुरी ।।टेक।।
साघन की संगत भली, निरमल होत शरीर ।
मल्यागिर की वास से, निरमल होत शरीर ।।

卐 राग राछरो 卐

अगम पंथ को राछरो कोई खेलो हो, खेलो हो काई संत सुजान ।
दिल के दोंना हम वये कोई खेलो हो, समता हो जी को मटिया मंगावे
गुरु गम गाओ हम वये कोई खेलो हो, समकित रेजा नीर सिचावो ।
कोई चुनरिया प्रेम की कोई खेलो हो, खोटो हो कोई सन्त सुजान ।
उठे है चुंनरिया प्रेम की कोई खेलो हो, शिर गई हो त्रिवेणी के घाट ॥

उत्तम कुल सरदार, करनी को उद्यम करो जिय प्यारे हो ।
तीरथ पर चित देओ, पाँच इन्द्री वश्य करो ॥टेक॥
दश विध करिल्यो वैल, शील संयम छई छोड़का ।
ज्ञान की कहलो गौन, भरती करो जिन नामकी ॥टेक॥
जो तुम परदेश जाओ, तीन रतन तुम लीजियो ।
दया धर्म लेओ साथ, जे वहां आदर सरदहै ॥टेक॥
कर्मबंध छोड़, चार कषाय परहरो ।
साहूकार जिनराज, वनज करो एक मुकति को ॥टेक॥
इह विधि खेय संजोय, इह विधि पहुंचो मुकति को ।
सब कर्म खिपाय कर, आवागमन निवार ॥टेक॥

●

卐 राग--अनबोलना 卐

नेम कुँवर अनबोलना, अनबोला रहो नहि जाय हो ॥टेक॥
बोले हो जासों बोलियो, अनबोला सों कहा बसाय हो ॥१॥
ठाड़ी हो राजुल दोई कर जोडे, सुनिया नेम कुँवार हो ॥२
बिलख वदन जब देख के, उपजी दया मन आय हो ॥३
देव तुही अरु गुरु तुही, धर्म तुही जिनराज हो ॥४
प्रेम प्रीति सो जपत हों, तोह बाना की लाज हो ॥५
नेम कुँवर अनबोलना ॥टेक

○

卐 राग कातिक 卐

दे कोई [illegible] गो, दे कोई [illegible] गो, लागे स्वामिया हो ॥टेक॥
[illegible] तेरे चरण कमल बल जाव हो ।
[illegible] हो ।

स्वामी वे जिनवर गुरु ध्याइये,
पद पायो है गंभीर ॥ऐ स्वामी०॥

स्वामी पांच हु इन्द्री वश करो,
छठे मन राखो धीर ॥ऐ स्वामी०।

स्वामी झांझ मृदंग ढप वाजियो,
झालर गहुर गंभीर ॥ऐ स्वामी०॥

●

卐 संबोधन 卐

सेइये मन ल्याय, सेइये मन ल्याय।
जैन धर्म पायो दोहलो ॥टेक॥

या भव बन भीतर विषय, भ्रमियो बहु बार।
एक पुन्य संजोग तें, नर उपजो आये ॥१॥

जासो करनी कर चलो, ऐसो औसर पाय।
फेर दाव नहिं पाय हो, पाछे पछिताय ॥२॥

या भव भीतर बन विषय, तेरा नहि कोय।
तेरा सहाई जिन धर्म है, निश्चय कर जाय ॥३॥

जिनवाणी सुनियो सदा, रुचि देके कान ॥टेक॥

●

卐 चाल-रेखता 卐

चेतन तूं क्या फिरे भूला, हिंडोला कर्म का झूला ॥टेक॥

करी तूने कुमत पटरानी, सुमत नहि चित में आनी।
जिया तूं ज्ञान का अंधो, मुगत अलोक से बन्दी ॥
जिया तूं उलट घट देखे, शरण जिनराज का पेखे।
प्रेम तिन प्रीति करि प्रभु से, छूट जाय दुख दोजग से ॥

卐 चाल-३ 卐

सोई आज मोरे प्रभुजी विमान चढे, विमान चढे सोई रथ पै चढे ।
नगर अयोध्या की सकरी हो गलियां,
इन गलियों में प्रभु आन जु कढे ॥
रुचि रुचि देव विमान बनाये, बिच हीरा बिच लाल लगे ।
कोई अगर तगर घिस ल्याये, काहूने केशर तिलक करे ॥
काहूने पाट पटम्बर कीनो, काहूने अम्बर थार भरे ।
काहूने कलश वन्दना कीनो, काहूने गज मोतिन चौक पूरे ॥

卐 चाल-४ 卐

मोरी रैन कटत नहिं नैम बिना, सोई नैम बिना पिय प्रेम बिना ।
सज बरात जूनागढ आये, हलधर कृष्ण मुरार घना ॥
सोई पशुवन टेर सुनी यदुनन्दन, बंध खोल उपजी करुणा ।
सोई कंकण तज गिरनार सिधारे, रहन न पाये दो चार दिना ॥
मेरे मन मे अब ऐसी आवे, पंच महाव्रत जा धरना ।
मात पिता सखियां समझावें, एक न मानी गिर चढना ॥
तप कर राजुल स्वर्ग सोलहवे नेम प्रभु शिव सुख करना ।
सेवक जन की यही विनय है, अष्ट कर्म निश्चय हरना ॥

卐 चाल-५ 卐

कीजो आप समान, हमारे प्रभु कीजो आप समान ॥टेक॥
और देव सब रागी द्वेषी चाहत अपनो मान ।
तुम निज गुण दातार प्रभुजी, दीजे निज गुन दान ॥

सुन्दर सुभाव मनोहर मूरत, करूणासिंध दया जो प्रगटी ॥
सहस अठोतर लक्षण विराजत, पंच ज्ञान छबि लटक मुकट की ।
रतनत्रय हिय माल विराजत, मेटत पीर सकल भव भव की ॥

●

★ भजन–१ ★

तोसो समरथ और नहि दूजा ॥टेक॥
है सबमें सबह्यो से न्यारा, घट जल मांझ रह्यो भरपूरा ।
तुंही गुण तुंही गुण गायक, तुंही करता तुंही अलख स्वरूपा ।
तारण तरण नाम पद तेरो, कर्म कलंकी किये अति चूरे ।
समरथ ब्रम्ह सदा अविनाशी, प्रेम मगन अपने घट बूझा ॥

○

卐 भजन-२ 卐

श्री परमातम ध्यान हमारा ॥टेक॥
पंच ज्ञान गुण अष्ट बिराजत, दोष अठारह नाशनहारा ।
लोभ क्रोध मान विवर्जित, केवलज्ञान किरण उजयारा ॥
अजपा जाप मंत्र बीजाक्षर, तीन लोक द्रग देखनहारा ।
संत भक्तजन ध्यावत नित ही, प्रेम मगन गुण आप कहा रे ॥

○

卐 पद 卐

फिर मिलना बड़ी दूर, फिर मिलना बड़ी दूर ।
अब रे मनाये जो तन रे, फिर मिलना बड़ी दूर ॥टेक॥
गर्भ वास के त्रास बिसर गये जब रहे उधो मुख झूल ।
डोल करो जब निकस न पावे, गये बिसर रस भूल ॥१॥

पाप करनें को बड़ी सयानो, दान पुण्य को हटता है।
खान पान लड़नें को योधा, तीरथ विरत को कच्चा है।
कुगुरु कुदेव को संगत करके, भवसागर में फिरता है।
सेवक कहे जो जन्म अकारथ, धर्म सुनें सोई सच्चा है॥

●

卐 चाल–परभातो–२ 卐

प्रातकाल मंत्र जपो नमोकार भाई, अक्षर पैंतीस शुद्ध हृदय में धराई।
विघन जाल सब दूर होंय संकट में सहाई॥
जन्त्र मन्त्र तन्त्र सब याही के बनाई, संपत भडार भरे अपय निध पाई
नव भव तेरो सुफल होय पातक टरि जाई॥
रिद्ध सिद्ध पारस घट में प्रगटाई, केवल सो ज्ञान वरे मोक्ष पदवो पाई
तीन लोक माह सार, वेदन में गाई॥
निश्चय भरु व्यवहार दोनों दर्शाई, जगत में प्रसिद्ध ध्यान मंगलोक भाई

●

卐 विनती 卐

प्रभुजी मोरी अरजी चित धरना।
अमनन काल अनाद बीत गये क्यो कर निरवरना॥
वगी जब नरकों की खबरें।
छेदन भेदन मारन ताडन सूली पर धरना ॥टेक॥
जहां जिन भोगी पर नारी।
लोहे पुतली ताती कर कर अंग अंग जारी ॥टेक॥
जीव ने मारे हैं अब धारी।
देह तिन्हों की खण्ड खण्ड कर वैतरणी डारी॥

लोक लाज कुल कान तजी सब, केवलग्यान प्रकाशोगे ।
लगन लगी जिननाथ भक्त से, चरण कमल अनुरागोगे ॥
मोसों पतित और नहिं दूजा, सही तुही अनुरागोगे ।
प्रेम मगन जा मूरत ऊपर, कोट भाणु छवि वरोगे ॥

卐 मंगलरूप-स्तुति 卐

अहो आदि गुरुदेव, वन्दों चरण तुम्हारे ।
अजितनाथजू की सेव, मन, वच, तन, उर धारे ॥
संभवनाथ भगवान, सुमति करो मति मेरी ।
पद्मप्रभु महाराज, आयो शरण तुम्हारे ॥
गांय सुपारसनाथ, निर्मल बुद्धि के धारी ।
चन्द्राप्रभु महाराज, चन्द्रपुरी अवतारी ॥
पुष्पदन्त महाराज सब राजन के राजा ।
शीतलनाथ जिनेन्द्र तारण तरण जिहाजा ॥
श्रीयांसनाथ महाराज, गुण को पार न पावे ।
श्री वांसपूज्य महाराज भवदधि पार उतारो ॥
विमलनाथ भगवान विमल बुद्ध मोहे दीजे ।
अनन्तनाथ महाराज, सेवक अपनो कीजो ॥
अहो धर्म गुरुदेव धर्म रिद्ध के धारी ।
शान्तिनाथ भगवान, तीन ही पदवी धारी ॥
कुंथुनाथ भगवान कुन्थ जिय व्रत धारे ।
अरहनाथ महाराज, देखत सब दुख टारे ॥
मल्लिनाथ भगवान काम मल्ल दर चूरे ।
मुनिसुव्रत भगवान तुम अनेक बहु पूरे ॥

लोक लाज कुल कान तजी सब, केवलग्यान प्रकाशोगे ।
लगन लगी जिननाथ भक्त से, चरण कमल अनुरागोगे ॥
मोसों पतित मौर नहिं दूजा, सही तुहो अनुरागोगे ।
प्रेम मगन जा मूरत ऊपर, कोट भाणु छवि वरोगे ॥

卐 मंगलरूप-स्तुति 卐

अहो आदि गुरुदेव, बन्दों चरण तुम्हारे ।
अजितनाथजू की सेव, मन, वच, तन, उर धारे ॥
संभवनाथ भगवान, सुमति करो मति मेरी ।
पद्मप्रभु महाराज, आयो शरण तुम्हारे ॥
साय सुपारसनाथ, निर्मल बुद्धि के धारी ।
चन्द्राप्रभु महाराज, चन्द्रपुरी अवतारी ॥
पुष्पदन्त महाराज सब राजन के राजा ।
शीतलनाथ जिनेन्द्र तारण तरण जिहाजा ॥
श्रीयांसनाथ महाराज, गुण को पार न पावे ।
श्री वासपूज्य महाराज भवदधि पार उतारो ॥
विमलनाथ भगवान विमल बुद्ध मोहे दीजे ।
अनन्तनाथ महाराज, सेवक अपनो कीजो ॥
अहो धर्म गुरुदेव धर्म रिद्ध के धारो ।
शान्तिनाथ भगवान, तीन ही पदवी धारी ॥
कुंथुनाथ भगवान कुन्थ जिय व्रत धारे ।
अरहनाथ महाराज, देखत सब दुख टारे ॥
मल्लिनाथ भगवान काम मद [illegible] चूरे ।
मुनिसुव्रत भगवान गुण अनेक बहु पूरे ॥

लोक लाज कुल कान तजी सब, केवलग्यान प्रकाशोगे।
लगन लगी जिननाथ भक्त से, चरण कमल अनुरागोगे।
मोसों पतित मोर नहिं दूजा, सही तुहो अनुरागोगे।
प्रेम मगन जा मूरत ऊपर, कोट भाणु छवि वरोगे॥

७

卐 मंगलरूप-स्तुति 卐

अहो आदि गुरुदेव, वन्दों चरण तुम्हारे।
अजितनाथजू की सेव, मन, वच, तन, उर धारे।
संभवनाथ भगवान, सुमति करो मति मेरी।
पद्मप्रभु महाराज, आयो शरण तुम्हारे॥
नाथ सुपारसनाथ, निर्मल बुद्धि के धारी।
चन्द्राप्रभु महाराज, चन्द्रपुरी अवतारी॥
पुष्पदन्त महाराज सब राजन के राजा।
शीतलनाथ जिनेन्द्र तारण तरण जिहाजा॥
श्रीयांसनाथ महाराज, गुण को पार न पावे।
श्री वांसपूज्य महाराज भवदधि पार उतारो॥
विमलनाथ भगवान विमल बुद्ध मोहे दीजे।
अनन्तनाथ महाराज, सेवक अपनो कीजो॥
अहो धर्म गुरुदेव धर्म रिद्ध के धारी।
शान्तिनाथ भगवान, तीन ही पदवी धारी॥
कुंथुनाथ भगवान् कुन्थ जिय कुन धारे।
अरहनाथ महाराज, देखत सब दुख टारे॥
मल्लिनाथ भगवान [illegible]।
मुनिसुव्रत भगवान [illegible]॥

भुंजें दोष छियालिस टाल । सो मुनि वंदौं सुरति संभाल ॥११॥
उचित वस्तु निज हित पर हेत । तथा चरम उपकरण अचेत ॥
निरख जतनसों गहैं जु कोय । सो मुनि नमहुं जोर कर दोय ।१२।
रोग विकृति पूरब आदान । नव दुवार मल अंग उठान ॥
डारें प्रासुक भूमि निहार । सो मुनि नमहुं भगति उर धार ॥१३॥
कोमल कर्कस हलुव संभार । रूक्ष सचिक्कण तपत तुसार ॥
इनको परस न सुखदुख लहैं । सो मुनिराज जिनेश्वर कहैं ॥१४॥
आमल कटुक कषायल मिष्ट । तिक्त क्षार रस इष्ट अनिष्ट ॥
इनहि स्वाद रति अरति न वेव । सो ऋषिराज नमहिं तिहुँ देव ।१५।
शुभ सुगंध नाना परकार । दुखदायक दुर्गंध अपार ॥
नासा विषय गनहि समतूल । सो मुनि जिनशासन तरु मूल ॥१६॥
श्याम हरित सित लोहित पीत । वर्ण विवर्ण मनोहर भीत ॥
ए निरखें तज राग विरोध । सो मुनि करें कर्ममल शोध ॥१७॥
शब्द कुशब्द हि समर ससाद । श्रवण सुनत नहि हर्ष विषाद ॥
थुति निंदा दोऊ सम सुणें । सो मुनिराज परमपद मुणें ॥१८॥
सामाइक साधे तिहुं काल । मुकति पंथ की करें समाल ॥
शत्रु मित्र दोऊ सम गिणें । सो मुनिराज करमरिपु हणें ॥१९॥
अरहंत सिद्ध सूरि उवझाय । साधु पंच पद परम सहाय ॥
इनके चरणनि में मन लाय । तिह मुनिवर के वंदो पाय ॥२०॥
पावन पंथ परमपद इष्ट । जगतमाहिं जानें उतकिष्ट ॥
ठानें गुणथुति वारंवार । सो मुनिराज लहैं भव पार ॥२१॥
ज्ञान क्रिया गुण धारें चित, दोष विलोकि करें प्राछित्त ॥
नित प्रतिक्रमण क्रिया रस लीन । सो साधु संजम परवीन ॥२२॥
जो जिनवचन रचन विस्तार । द्वादशांग परमागम सार ॥
[illegible] माहिं भाव करें [illegible] । सो मुनिवर वंदहुं वर भाव ॥२३॥

काउसग्ग मुद्रा धरि नित्त । शुद्ध स्वरूप विचारैं चित्त ॥
त्यागे त्रिविध जोग ममकार । सो मुनिराज नमों निरधार ॥२४॥
प्रासुक शिला उचित भू खेत । अचल अंग समभाव समेत ॥
पच्छिम रैन अलप निद्राल । सो योगीश्वर वंचै काल ॥२५॥
धर्मध्यान युत परम विचित्र । अंतर बाहिज सहज पवित्र ॥
न्हान विलेपन तजैं त्रिकाल । वंदो सो मुनि दीनदयाल ॥२६॥
लोकलाज विगलित भयहीन । विषय वासना रहित अदीन ॥
नगन दिगंबर मुद्रा धार । सो मुनिराज जगत सुखकार ॥२७॥
सघन केश गर्भित मल कीच । त्रस असंख्य उतपति तसु बीच ॥
कचलुंचें यह कारण जान । सो मुनि नमहुं जोरि जुग पान ॥२८॥
क्षुधावेदनी उपशम हेत । रस अनरस समभाव समेत ॥
एक बार लघु भोजन करे । सो मुनि मुकतिपंथ पग धरें ॥२९॥
देह सहारो साधन मोख । तबलों उचित काय वश पोख ॥
यह विचार यति लेहिं अहार । सो मुनि परम धरम धन धार ॥३०॥
जहँ जहँ नव दुवार मलपात । तहँ तहँ अमित जीव उतपात ॥
यह लख तजहिं दंतवन काज । सो शिवपथ-सायक ऋषिराज ॥३१॥
दोहा—ये अट्ठाविस मूलगुण, जो पालहिं निरदोख ।
सो मुनि कहत बनारसी, पावैं अविचल मोख ॥

ॐ अथ भूधरकृत गुरुस्तुति ॐ

वंदौं दिगंबर गुरुचरन, जग तरनतारन जान ।
जे भरमभारी रोगको हैं, राजवैद्य महान ।
जिनके अनुग्रह बिन कभी, नहिं कटैं कर्मजंजीर ।
ते साधु मेरे उर बसहु, मम हरहु पातक पीर ॥१॥

यह तन अपावन अथिर है, संसार सकल असार ।
ये भोग विष पकवान से, इहभांति सोच विचार ॥
तप विरचि श्रीमुनि वन वसे, सब छांडि परिगह भीर ।
ते साधु मेरे उर बसहु, मम हरहु पातक पीर ॥२॥

जे काच कंचन सम गिनहिं, अरि मित्र एक सरूप ।
निंदा बड़ाई सारिखी, वनखंड शहर अनूप ॥
सुखदुःख जीवन मरनमें, नहिं खुशी नहिं दिलगीर ।
ते साधु मेरे उर बसहु, मम हरहु पातक पीर ॥३॥

जे वाह्य परवत वन बसै, गिरि गुफा महल मनोग ।
सिल सेज समता सहचरी, शशिकिरन दीपक जोग ॥
मृग मित्र भोजन तपमई विज्ञान निरमल नीर ।
ते साधु मेरे उर बसहु, मम हरहु पातक पीर ॥४॥

सूखहिं सरोवर जल भरे, सूखहिं तरंगिनि तोय ॥
बाटहिं बटोही ना चले, जहं घाम गरमी होय ॥
तिहं काल मुनिवर तप तपहिं, गिरि शिखर ठाडे धीर ।
ते साधु मेरे उर बसहु, मम हरहु पातक पीर ॥५॥

घनघोर गरजहिं घनघटा, जल परहिं पावसकाल ।
चहुं ओर चमकहिं बीजुरी, अति चलै सीरी ब्याल ॥
तरु हेठ तिष्ठहिं तब जती, एकान्त अचल शरीर ।
ते साधु मेरे उर बसहु, मम हरहु पातक पीर ॥६॥

जब सीतमास तुषारसों, दाहै सकल वनराय ।
जब जमैं पानी पोखरा, थरहरै सब की काय ॥
तब नगन निवसैं चौहटै, अथवा नदी के तीर ।
ते साधु मेरे उर बसहु, मम हरहु पातक पीर ॥७॥

कर जोर 'भूधर' बीनवै, कब मिलहिं वे मुनिराज ।
यह आश मन की कब फले, मम सरहिं सगरे काज ॥
संसार विषम विदेश में, जे बिना कारण वीर ।
ते साधु मेरे उर वसहु, मम हरहु पातक पीर ॥८॥

ॐ अथ गुर्वावली लिख्यते ॐ

जैवंत दयावंत सुगुरु देव हमारे ।
संसार विषम खारसो जिनभक्त उधारे ॥टेक॥
जिनवीर के पीछे यहां निर्वान के थानो ।
बासठ बरस में तीन भये केवलज्ञानी ।
फिर सौ बरस में पांच श्रुतकेवली भये ।
सर्वांग द्वादशांगके उमंग रस लये ॥जैवंत ॥१॥
तिस बाद वर्ष एकशतक और तिरासी ।
इसमें हुए दश पूर्व ग्यारै अंग के भाषी ॥
ग्यारै महामुनीश ज्ञान दानके दाता ।
गुरुदेव सोई देहिंगे भविवृंद को साता ॥जैवंत० २॥
तिस बाद वर्ष दोय शतक वीस के माहीं ।
मुनि पांच ग्यारै अंग के पाठी हुये यांहीं ।
तिस बाद बरस एकसौ अठार में जानो ।
मुनि चार हुए एक आचारांग के ज्ञानी ॥जैवंत० ॥३॥
तिस बाद हुये हैं जु सुगुरु पूर्व के धारक ।
करुणानिधान भक्त को भवसिंधु उधारक ॥
करकंजतें गुरु मेरे ऊपर छांह कीजिये ।
दुख द्वंद्व को निकंद के आनंद दीजिये ॥ जैवंत ॥४

जिनवीर के पीछे सों वरस छहसौ तिरासी ।
तव तक रहे इक अंग के गुरुदेव अभ्यासी ॥
तिस वाद कोई फिर न हुये अंग के धारी ।
पर होते भये महा सुविद्वान उदारी ॥ जैवंत० ॥५॥

जिनसों रहा इस काल में जिनधर्मका शाका ।
रोपा है सात भंग का अभंग पताका ॥
गुरुदेव नयंधर को आदि दे बड़े नामी ।
निरग्रंथ जैनपंथ के गुरुदेव जो स्वामी ॥ जैवंत० ॥६॥

भाषों कहां लों नाम वड़ी वार लगेगा ।
परनाम करों जिससे वेड़ा पार लगेगा ।
जिसमें से कछुइक नाम सूत्रकार के कहों ।
जिन नाम के प्रभाव से परभाव को दहों ॥ जैवंत० ॥७॥

तत्वार्थसूत्र नामि उमास्वामी किया है ।
गुरुदेव ने सक्षेप से क्या काम किया है ॥
जिसमें अपार अर्थ ने विश्राम किया है ।
बुधवृंद जिसे ओर से परनाम किया है ॥ जैवंत० ॥८॥

वह सूत्र है इस कालमें जिनपंथ की पूंजी ।
सम्यक्त्व ज्ञानभाव है जिस सूत्रकी कूंजी ॥
लड़ते है उसी सूत्रसों परवाद के मूंजी ।
फिर हारके हट जाते हैं इक पक्षके लूंजी ॥ जैवं० ॥९॥

स्वामी समंतभद्र महाभाष्य रचा है ।
सर्वंग सात भंगका उमंग मचा है ॥
परवादियों का मर्म गर्व जिससे पचा है ।
निर्वाण सदन का मानों सोपान रचा है ॥ जैवंत० ॥१०॥

वंदौं तिन्हैं मुनि जे हुये कवि काव्य करैया ॥
वंदामि गमक साधु जो टीका के धरैया ॥
वादी नमों मुनिवाद में परवाद हरैया ।
गुरु वागमीक को नमों उपदेश करैया ॥ जैवंत० ।२९।
ये नाम सुगुरु देवका कल्याण करै है ।
भविवृंद का तत्काल ही दुख द्वंद हरै है ॥
धनधान्य ऋद्धि सिद्धि नवों निद्धि भरै हैं ।
आनंदकंद देहि सबो विघ्न टरै हैं ॥जैवंत० ।३०।
इह कंठ में धारै जो सुगुरु नाम की माला ।
परतीत सों उरप्रीति सों ध्यावै जु त्रिकाला ।
इहलोक का सुख भोग सो सुरलोक में जावै ।
नरलोक में फिर आयके निरवान को पावै ।
जैवंत दयावंत सुगुरुदेव हमारे ।
संसार विषम खारसों जिव भक्त उधारे ॥३१॥

●

##卐 मंगलाष्टक 卐

(कवित्त-३१ मात्रा)

संघसहित श्रीकुंदकुंद गुरु, वंदनहेत गये गिरनार ।
वाद पर्यो तहँ संशयमतिसों, साक्षी वदी अंबिकाकार ॥
'सत्य' पंथ निरग्रंथ दिगंबर, कही सुरी तहँ प्रगट पुकार ।
सो गुरुदेव बसो उर मेरे, विघनहरण मंगल करतार ॥१॥
स्वामी समंतभद्र मुनिवरसों शिवकोटी हठ कियो अपार ।
वंदन करो शंभुपिंडी को, तब गुरु रच्यो स्वयंभू भार ॥
वंदन करत पिंडिका फाटी, प्रगट भये जिनचंद्र उदार ।
सो गुरुदेव बसो उर मेरे, विघनहरण मंगल करतार ॥२॥

श्रीअकलंकदेव मुनिवरसों, वाद रच्यो जहँ बौद्ध विचार ।
तारादेवी घटमें थापी, पटके ओट करत उच्चार ॥
जीत्यो स्याद्वादबल मुनिवर, बौद्धबोध तारामद टार ।
सो गुरुदेव वसो उर मेरे, विघनहरण मंगल करतार ॥३॥
श्रीमत विद्यानंदि जबै, श्रीदेवागम थुति सुनी सुधार ।
अर्थ हेतु पहुँच्यो जिनमंदिर, मिल्यो अर्थ तहँ सुख दातार ॥
तब व्रत परम दिगंबरको धर, परमत को कीनों परिहार ।
सो गुरुदेव वसो उर मेरे, विघनहरण मंगल करतार ॥४॥
श्रीमत मानतुंग मुनिवरपर, भूप कोप जब कियो गंवार ।
बंद कियो तालोंमें तबही, भक्तामर गुरु रच्यो उदार ॥
चक्रेश्वरी प्रगट तब ह्वैकें, बंधन काट कियो जयकार ।
सो गुरुदेव वसो उर मेरे, विघनहरण मंगल करतार ॥५॥
श्रीमत वादिराज मुनिवरसों, कह्यो कुष्टि भूपति जिहं वार ।
श्रावक सेठ कह्यो तिहं अवसर, मेरे गुरु कंचन तनधार ॥
तब ही एकीभाव रच्यो गुरु, तन सुवरणद्युति भयो अपार ।
सो गुरुदेव वसो उर मेरे, विघनहरण मंगल करतार ॥६॥
श्रीमत कुमुदचंद्र मुनिवरसों, वाद पर्यो जहं सभा मंझार ।
तब ही श्रीकल्यानधाम थुति, श्रीगुरु रचना रची अपार ॥
तब प्रतिमा श्रीपार्श्वनाथ की प्रगट भई त्रिभुवन जयकार ॥
सो गुरुदेव वसो उर मेरे, विघनहरण मंगल करतार ॥७॥
श्रीमत अभयचंद्र गुरुसों जब, दिल्लीपति इमि कही पुकार ।
कै तुम मोहि दिखावहु अतिशय, कै पकरों मेरो मत सार ॥
तब गुरु प्रगट अलौकिक अतिशय, तुरत हर्यो ताको मद भार ।
सो गुरुदेव वसो उर मेरे विघन हरन मंगल करतार ॥८॥

मुनिजन हिये कमल निज टोहि, सिद्धरूपसम ध्यावहिं तोहि ।
कमलकरणिका विन नहिं और, कमलबीज उपजन की ठौर ।१४।
जब तुव ध्यान धरै मुनि कोय, तब विदेह परमातम होय ।
जैसे धातु शिला तनु त्याग, कनकस्वरूप धवै जब आग ॥१५॥

जाके मन तुम करहु निवास, विनशि जाय क्यों विग्रह तास ।
ज्यो महत विच आवै कोय, विग्रहमूल निवारै सोय ।१६।
करहिं विवुध जे आतमध्यान, तुम प्रभावतैं होय निदान ।
जैसे नीर सुधा अनुमान, पीवत विषविकारकी हान ।१७।

तुम भगवंत विमल गुणलीन, समलरूप मानहिं मतिहीन ।
ज्यों पीलिया रोग दृग गहै, वर्ण विवर्ण शंखसों कहै ।१८।

दोहा—निकट रहत उपदेश सुन तरुवर भयो अशोक ।
ज्यों रवि ऊगत जीव सब, प्रगट होत भुविलोक ॥१९॥
सुमनवृष्टि ज्यों सुर करहिं, हेठ बीठ मुख सोहि ।
त्यो तुम सेवत सुमनजन वध अधोमुख होहिं ॥२०॥
उपजी तुम हिय उदधितैं, वानी सुधा समान ।
जिहँ पीवत भविजन लहहिं, अजर अमर पद थान ॥२१॥
कहहिं सार तिहुं लोक को, ये सुरचामर दोय ।
भावसहित जो जिन नमैं, तिहँ गति ऊरध होय ॥२२॥
सिंहासन गिरिमेरुसम, प्रभु धुनि गरजत घोर ।
श्याम सुतनु घनरूप लखि, नाचत भविजन मोर ॥२३॥
छविहत होत अशोक दल, तुम भामण्डल देख ।
[illegible] के निकट रह, रहत न राग विशेष ॥२४॥
[illegible] कहै तिहुँ लोक को, ये सुरदुन्दुभिनाद ।
[illegible] जिन, भजहु तजहु परमाद ॥२५॥

तीन छत्र त्रिभुवन उदित, मुक्तागण छवि देत ।
त्रिविधरूप धर मनहु शशि, सेवत नखत समेत ॥२६॥

(पद्धरि छन्द)

प्रभु तुम शरीर दुति रतन जेम, परतापपुंज जिम शुद्ध हेम
अति धवल सुजस रूपा समान, तिनके गढ़ तीन विराजमान ॥२७॥
सेवहिं सुरेंद्र कर नमत भाल, तिन सीस मुकुट तज देहिं माल ।
तुम चरण लगत लहलहै प्रीति, नहिं रमहिं और जन सुमन रीति ॥२८॥
प्रभु भोगविमुख तन करमदाह, जन पार करत भवजल निवाह ।
ज्यों माटीकलश सुपक्क होय, ले भार अधोमुख तिरहिं तोय ॥२९॥
तुम महाराज निरधन निराश, तज विभव विभव सब जगप्रकाश ।
अक्षरस्वभाव सु लिखै न कोय, महिमा भगवंत अनंत सोय ॥३०॥
कर कोप कमठ निज वैर देख, तिन करी धूलिवरषा विशेष ।
प्रभु तुम छाया नहिं भई हीन, सो भयो पापि लंपट मलीन ॥३२॥
गरजंत घोर घन अंधकार, चमकत विज्जु जल मुसलधार ।
बरसंत कमठ धर ध्यान रुद्र, दुस्तर करंत निज भव समुद्र ॥३३॥

(वास्तु छंद)

मेघमाली मेघमाली आप बल फोरि ।
भेजे तुरत पिशाचगण, नाथ पास उपसर्ग कारण ।
अग्नि जाल झलकंत मुख, धुनि करत जिमि मत्त वारण ।
कालरूप विकराल तन, मुंडमाल हित कंठ ।
ह्वै निशंक वह रंक निज, करै कर्म दृढ़ गंठ ॥३४॥

(चौपाई)

जे तुम चरणकमल तिहुंकाल, सेवहिं तज माया जंजाल ।
भाव भगति मन हरष अपार, धन्य धन्य जग तिन अवतार ॥३५॥

भवसागर में फिरत अजान, मैं तुअ सुजस सुन्यो नहिं कान ।
जो प्रभुनाम मंत्र मन धरै, तासों विपति भुजंगम डरै ॥३६॥
मनवांछित फल जिनपदमाँहि, मैं पूरव भव पूजे नाहिं ।
मायागमन फिर्यो अज्ञान, करहिं रकजन मुझ अपमान ॥३७॥
मोहतिमिर छायो दृग मोहि, जन्मांतर देख्यो नहिं तोहि ।
तो दुर्जन मुझ संगति गहैं, मरमछेदके कुवचन कहैं ॥३८॥
सुन्यो कान जस पूजे पाय, नैनन देख्यो रूप अघाय ।
भक्तिहेतु न भयो चित चाव, दुखदायक किरिया विन भाव ॥३९॥
महाराज शरणागत पाल, पतितउधारण दीनदयाल ।
सुमिरण करहुं नाय निज शीश, मुझ दुख दूर करहु जगदीश ॥४०॥
कर्मनिकंदन महिमा सार, अशरणशरण सुजस विसतार ।
नहिं सेये प्रभु तुमरे पाय, तो मुझ जन्म अकारथ जाय ॥४१॥
सुरगनवंदित दयानिधान, जगतारण जगपति अनजान ।
दुखसागरतैं मोहि निकासि, निर्भय थान देहु सुखरासि ॥४२॥
मैं तुम चरणकमल गुन गाय, बहुविधि भक्ति करी मनलाय ।
जनम जनम प्रभु पाऊं तोहि, यह सेवाफल दीजे मोहि ॥४३॥

(दोधकांत बेसरी छंद—षट्पद)

इहविधि श्रीभगवंत, सुजस जे भविजन भाषहिं ।
ते जिन पुण्यभंडार, संचि चिरपाप प्रणासहिं ॥
रोम रोम हुलसंति, अंग प्रभु गुण मन ध्यावहिं ।
स्वर्ग संपदा भुंज वेग पंचमगति पावहिं ॥
यह कल्याणमंदिर कियो कुमुदचंद्र की बुद्धि ।
भाषा कहत 'बनारसी' कारण समकित शुद्धि ॥४४॥

आतम केवल ज्ञानमय, निश्चय-दृष्टि निहार ।
सब विभाव परिणाममय, आस्रव भाव विडार ॥७॥
निज स्वरूपमें लीनता, निश्चय संवर जानि ।
समिति गुप्ति संजम धरम, धरे पापकी हानि ॥८॥
संवरमय है आतमा, पूर्व कर्म झड़ जाय ।
निजस्वरूप को पायकर, लोकशिखर जब थाय ॥९॥
लोकस्वरूप विचारिकैं, आतमरूप निहार ।
परमारथ व्यवहार मुणि, मिथ्याभाव निवारि ॥१०॥
बोधि आपका भाव है, निश्चय दुर्लभ नाहिं ।
भवमें प्रापति कठिन है, यह व्यवहार कहाहिं ॥११॥
दर्शज्ञानमय चेतना, आतमधर्म बखानि ।
दयाक्षमादिक रतनत्रय, यामें गर्भित जान ॥१२॥

ज्ञान-पच्चीसी

सुरनरतिरियगयोनिमें, नरकनिगोदभमंत ।
महामोहकी नींदसों, सोये काल अनंत ॥ १ ॥
जैसें ज्वरके जोरसों, भोजनकी रुचि जाय ।
तैसें कुकरमके उदय, धर्मवचन न सुहाय ॥ २ ॥
ज्यों भूख ज्वरके गये, रुचिसों लेय अहार ।
अशुभ गये शुभके जगे, जानै धर्म विचार ॥ ३ ॥
जैसे पवनझकोरतें, जलमें उठै तरंग ।
त्यों मनसा चंचल भई, परिगहके परसंग ॥ ४ ॥
जहां पवन नहिं संचरै, तहां न जलकल्लोल ।
त्यों सब परिगह त्यागतें मनसा होय अडोल ॥ ५ ॥

ज्यों काहू विषधर डसै, रुचिसों नीम चबाय।
त्यों तुम ममतासौं मढे, मगन विषयसुख पाय॥ ६॥
नीम रसन परसै नहीं, निर्विष तन जब होय।
मोह घटै ममता मिटै, विषय न वांछै कोय॥७॥
ज्यो सछिद्र नौका चढे, बूडहि अंध अदेख।
त्यों तुम भवजलमे परे, विन विवेक धर भेख॥ ८॥
जहाँ अखंडित गुण लगे, खेवट शुद्धविचार।
आतमरुचि नौका चढे, पावहु भवजल पार॥ ९॥
ज्यों अंकुश माने नहीं, महामत्त गजराज।
त्यों मन तृष्णामें फिरै, गिन न काज अकाज॥१०॥
ज्यों नर दाव उपायकै, गहि आने गज साधि।
त्यों या मन वश करनको, निर्मल ध्यान-समाधि॥११॥
तिमिररोगसों नैन ज्यों, लखै और को और।
त्यो तुम संशयमे परे, मिथ्यामति की दौर॥१२॥
ज्यो औषध अंजन किये, तिमिर-रोग मिट जाय।
त्यों सतगुरु उपदेशतैं, संशय वेग विलाय॥१३॥
जैसैं सब यादव जरे, द्वारावति की आगि।
त्यों मायामें तुम परे, कहाँ जाहुगे भागि॥१४॥
दीपायनसों ते बचे, जे तपसी निरग्रंथ।
तजि माया समता गहो, यहै मुकति को पंथ॥१५॥
ज्यों कुधातु के फेटसों, घटबढ कंचन कांति।
पाप पुण्य कर त्यों भये, मूढातम बहुभांति॥१६॥
कंचन निज गुण नहि तजै, हीन वानके होत।
घटघट अंतर आतमा, सहज स्वभाव उदोत॥१७॥

कमला चपल रहै थिर नाय, यौवन कांति जरा लपटाय ।
सुत मित नारी नाव सँजोग, यह संसार सुपनका भोग ॥१५॥
यह लखि चित धर शुद्ध सुभाव, कीजे श्रीजिनधर्म उपाव ।
यथाभाव जैसी गति गहै, जैसी गत तैसा सुख लहै ॥१६॥
जो मूरख बुद्धीकर हीन, विषयपंथरत व्रत नहिं कीन ।
श्रीजिनभाषित धर्म न गहै, जैसी गत तैसा सुख लहै ॥१७॥
आलस मन्दबुद्धि है जास, कपटी मगन- विषय सठ तास ।
कायरता नहिं परगुण ढकै, सो तिर्यंचजोन लहि थकै ॥१८॥
आरतरौद्रध्यान नित करै, क्रोधादिक मच्छरता धरै ।
हिंसक वैरभाव अनुसरै, सो पाविष्ठ नरकगति परै ॥१९॥
कपटहीन करुणा चितमाहिं, हेय उपादे भूले नाहिं ।
भक्तिवंत गुणवंत जु कोय, सरल सुभाव सुमानुष होय ॥२०॥
श्रीजिन वचन मगन तपवान, जिन पूजै दे पात्रहिं दान ।
रहै निरंतर विषय उदास, सोहो लहैं सुरग आवास ॥२१॥
मानुषजोन अंतको पाय, सुन जिनवचन विषय विसराय ।
गहै महाव्रत दुर्द्धर वोर, शुक्लध्यान थिर लह शिव वोर ॥२२॥
धर्म करत सुख होय अपार, पाप करत दुख विविध प्रकार ।
बालगुपाल कहैं नर नारि, इष्ट होय सोई अवधारि ॥२३॥
श्री जिनधर्म मुकतिदातार, हिंसाकर्म बढइ संसार ।
यह उपदेश जान बड़भाग, एक धर्मसों कर अनुराग ॥२४॥
व्रत संजम जिनपद श्रुति सार, निर्मल सम्यकभाव जु धार ।
तन कषाय विषय कृश करो, ता तुम मुकतिकामिनी वरो ॥२५॥

दोहा

सुभ कुमुदनि शशि सुखकरन, भवदुखसागर जान ।
कहै ब्रह्म जिनदास यह, पंथ धर्म को ज्ञान ॥२६॥

दुर्जन मोह दगा के काज, बांधी नलनी तल धर नाज।
तुम जिन बैठहु सुवा सुजान, नाज विषयसुख लहि तिहँ थान ॥५॥
जो बैठहु तो पकरि न रहो, जो पकरो तो दृढ जिन गहो।
जो दृढ गहो तो उलटि न जाव, जो उलटो तो तजि भजि धाव ॥६॥

इहविध सुआ पढ़ायो नित्त, सुवटा पढिकै भयो विचित्त।
पढत रहै निशिदिन ये बैन, सुनत लहैं सब प्रानी चैन ॥७॥
इक दिन सुवटै आई मनै, गुरुसंगत तज भजगये बनै।
वनमें लोभ-नलिन अति बनी, दुर्जन मोह दगाकों तनी ॥८॥

ता तर विषयभोग अन धरे, सुवटै जान्यो ये सुख खरे।
उतरे विषयसुखन के काज, बैठ नलिनपै विलसै राज ॥९॥
बैठो लोभ-नलिनपै जबैं, विषय-स्वाद-रस लह्यो तबै।
लटकत तरैं उलटि गये भाव, तर मुंडी ऊपर भये पांव ॥१०॥
नलनी दृढ पकरे पुनि रहै, मुखतैं वचन दीनता कहै।
कोउ न तहां छुड़ावनहार, नलनी पकरे करहि पुकार ॥११॥
पढत रहै गुरुके सब बैन, जे जे हितकर रखिये ऐन।
सुवटा वनमें उड जिन जाहु, जाहु तो भूल चुगा जिन खाहु ॥१२॥
नलनी के जिन जइयो तीर, जाहु तो तहां न बैठहु वीर।
जो बैठो तो दृढ जिन गहो, जो दृढ गहो तो पकरि न रहो ॥१३॥
जो पकरो तो चुगा न खइयो, जो तुम खाव तो उलट न जइयो।
जो उलटो तो तज भज धइयो, इतनो सीख हृदयमें लहियो ॥१४॥
ऐसे वचन पढ़त पुन रहै, लोभ नलिन तज भज्यो न चहै।
आयो दुर्जन दुर्गतिरूप, पकरे सुवटा सुन्दर भूप ॥१५॥
मारे दुःखके नानप्रकार, सो दुख कहत न आवै पार।
[illegible] बहु संकट सहै, परवश पर्यो महा दुख लहै ॥१६॥

सुवटा की सुधि बुधि सब गई, यह तो बात और कछु भई ।
आय परयो दुखसागर माहिं, अब इततें कितको भज जाहि ॥१७॥
केतो काल गयो इह ठौर, सुवटे जियमे ठानी और ।
यह दुख जाय कटै किह भांति, ऐसी मनमे उपजी ख्यांति ॥ १८ ॥
रात दिना प्रभु सुमरन करै, पाप-जाल काटन चित धरै ।
क्रम क्रम कर काट्यो अघजाल, सुमरत फल भयो दीनदयाल ॥१९।
अब इततें जो भजकें जाउं, तो नलनीपर बैठ न खाउं ।
पायो दाव भज्यो ततकाल, तज दुर्जन दुर्गति जंजाल ॥ २० ॥
आयो उड़त बहुरि बनमांहि, बैठ्यो नरभवद्रुमकी छांहि ।
तित इक साधु महा मुनिराय, धर्म-देशना देत सुनाय ॥२१॥
यह संसार कर्मवन रूप, तामहिं चेतन सुआ अनूप ।
पढ़त रहै गुरु वचन विशाल, तौहू न अपनो करै संभाल ॥२२॥
लोभ नलिनपै बैठ्यो जाय, विषयस्वादरस लटक्यो आय ।
पकरहि दुर्जन दुर्गति परै, तामैं दु:ख बहुते जिय भरै ॥ २३ ॥
सो दुख कहत न आवै पार, जानत जिनवर ज्ञान मझार ।
सुनतहि सुवटो चौंक्यो आप, यह तो मोहि परयो सब ताप ॥२४॥
ये दुख तो सब मैं हो सहे, जो मुनिवरने मुखतें कहे ।
सुवटा सोचै हियेमझार, ये गुरु साचे तारनहार ॥ २५ ॥
मैं शठ फिरयो करमवनमाहि, ऐसे गुरु कहु पाये नाहिं ।
अब मोहि पुण्य उदै कछु भयो, साचे गुरुको दर्शन भयो ॥२६॥
गुरुकी थुति कर बारंबार, सुवटा सोचै हिये मझार ।
सुमरत आप पाप भजगयो, घटके पट सुख सम्यक थयो ॥२७॥
समकित होत लखी सब बात, यह मैं यह पर द्रव्य विख्यात ।
चेतनके गुण निजमहिं धरे, पुद्गल रागादिक परिहरे ॥२८॥

भवभोग भोगि, योगेश भये, श्रीपाल कर्म हनि मोक्ष गये ।
दूजे भव मैना पाया शिव रजधानी । फल० ॥ ९ ॥
जो पाठ करें मन वच तन से, वे छूट जांय भव बन्धन से ।
मक्खन मत करो विकल्प, कहा जिनवाणी । फल० ॥१०॥

होली

होली खेलें मुनिराज सकल वन में ॥टेक॥

काहे की उन होली बनाई, काहे को आग लगाई वन में ।
होली खेलें मुनिराज सकल वन में ॥

कर्म काट उन होली बनाई, तो ज्ञान को आग लगा वन में ।
होली खेलें मुनिराज सकल वन में ॥

काहे को उन रंग बनायो, तो काहे को गुलाल उड़ायो वन में ।
होली खेलें मुनिराज सकल वन में ॥

करुणा केसर रंग बनायो, ज्ञान गुलाल उड़ायो वन में ।
होली खेलें मुनिराज सकल वन में ॥

ऐसी होली खेलें मुनीश्वर फेर न आवें भव वन में ।
होली खेलें मुनिराज सकल वन में ॥ होली खेलें ।

भजन

तुम सुनो प्रभुजी अरज हमारी मेरा काम तुमसे अटका,
भवसागर में रुला फिरत हूं लाख चोरासी योनि में भटका ।

गर्भ वेदना सही बहुत सी उल्टा मुख करके लटका,
गर्भ कूप से जभी निकाला फेर जमी पर धर पटका ॥तुम॥

बालापन अरु तरुण अवस्था वृद्धपना जब आय लटका,
ये तीनों पन यों ही खोये, खेल बनाया ज्यों नटका ॥तुम॥

अष्ट कर्म ने खूब नचाया, ऊपर से मारा सटका,
जो दुख दीने सोई का पावे पाप लिये यों ही भटका ॥तुम॥

दीन दयाल दयानिधि स्वामी चरण शरण का है तड़का,
हाथ जोड़कर शीश नवाऊँ मेरा मिटाय दीजे सब खटका ॥तुम॥

चेतावनी

दुर्लभ नरतन पाय जन्म विषयों में गमाता है।
अमृत प्याला हाथ. दिवाना इसे न पीता है॥
जीवन तेरा छिन छिन घटता, तू गिनता में दिन दिन बढ़ता।
गिन गिन बीते साल, काल सिर पर मडराता है॥
दुर्लभ नरतन पाय० ॥टेक।

झूठा सब संसार बसेरा, जीते जी का मेरा तेरा।
करले आतम-ज्ञान सगा नहिं कोई दिखाता है॥टेक॥
झूठी जग की नातेदारी, अपने मतलब की सब यारी।
आँख मुंदे के बाद त्यारी, मरघट की करता है॥टेक॥
कोई केवल घर तक आवें, कोई साथ मसाने जावें।
सूब तलाशी लेय, अग्नि हाथों से धरता है॥टेक॥
हाय न दिल में कुछ शरमावें, बाँस मार मुँह आग लगावें।
कैसा तेरा प्रेम, वहाँ पर बैर दिखाता है॥टेक॥
कैसा तेरा रोना धोना, छोड़ो रंज यही था होना।
भूलो उसकी याद, साथ में खाना खाता है॥टेक॥
क्या तूने अब तक नहिं जाना, दुनियाँ एक मुसाफिरखाना।
उठ पर से स्नेह, तुझे यह सदा रुलाता है॥टेक।
दुनियाँ की यह सही कहानी, त्यागो टेक न करो मनमानी।
"भक्तिश्री" यह धर्म का पल्ला, हाथ गहो जो साथ निभाता है॥
दुर्लभ नरतन पाय, जन्म विषयों में गमाता है॥

✿

चेतावनी

नरतन पाय अमोल, अरे क्यों यों ही गमाता है ।
ज्ञान-दृष्टि से देख तनक, यह जीवन जाता है ॥
ज्यो तरुवर की ढलती छाया, त्यों चपला चमकाती काया ।
त्यों यह जीवन है क्षणभंगुर, क्यो अपनाता है ॥
नरतन पाय अमोल० ॥ टेक ॥

सुन्दर तन को देख लुभाया, नाहक इससे प्रेम बढ़ाया ।
साबुन से मल-मल पखार, उसमें तैल लगाता है ।
नरतन पाय अमोल० ॥ टेक ॥

लेकिन तेरा व्यर्थ नहाना, तन से नाहक मेल दिखाना ।
ज्यों धोता त्यों मैला, अरे यह कैसा नाता है ॥
नरतन पाय अमोल० ॥ टेक

वस्त्र मुलायम पतले पीले, रेशम के चोखे चमकीले ।
इनको पहिन पहिन कर मन में, अति हर्षाता है ॥
नरतन पाय अमोल० ॥ टेक ॥

रत्नजड़ित सोने के गहने, तूने अपने तन में पहिने ।
उनको देख-देख कर दिल में, नहीं अघाता है ॥
नरतन पाय अमोल० ॥ टेक ॥

भाई बन्धु कुटुम्ब सब तेरे, देखत के ही हैं सब मेले
अन्त समय जब आय, नहीं कोई साथी दिखाता है ॥
नरतन पाय अमोल० ॥ टेक

ए "मुक्तिश्री" गुरु चरण पड़ी है आके ।
अब जाना है उस धाम, लौटूं न जाके ॥
अब जगादे आतमज्ञान, हटे अज्ञान तारण गुरु आके ।
अब जाना है उस धाम, लौटूं न जाके ॥

☼

प्रभाती

आतम परमातम पद गर्भित, सिद्धस्वरूप हम ज्ञानी ।
अलख निरंजन, सर्व कर्म भंजन, सत्यरमण गुणखानी ॥
शास्त्रपठन से होकर वक्ता, खूब खिरत है वाणी ।
स्व-पर निश्चय भेद करत हैं, वह पंडित है ज्ञानी ॥
आतम परमातम पद गर्भित, सिद्धस्वरूप हम ज्ञानी ॥ टेक ॥

चार दान नित करत शक्ति सम, मान गर्व निज हानी ।
दाता वही कहा जाता है, पर रा रखे सन्मानी ॥
आतम परमातम पद गर्भित सिद्धस्वरूप हम ज्ञानी ॥ टेक ॥

रण में विजय पाने से प्राणी, वीर नहीं हो जाता है ।
इन्द्रियें जीत विजय करने से, शूर-वीर जग जानी ॥
आतम परमातम पद गर्भित, सिद्धस्वरूप हम ज्ञानी ॥ टेक ॥

पांच ज्ञान का ज्ञाता होकर, अपना निधि ना जानी ।
"मुक्तिश्री" अल्पज्ञ ज्ञान से, मेरी बड़ी है हानि ॥
आतम परमातम पद गर्भित, सिद्ध स्वरूप हम ज्ञानी ।
अलख निरंजन, सर्व कर्म भंजन, सत्य-रमण गुणखानी ॥

☼

जिस क्रिया रूपी वृक्षों की करते हैं वाड़ी, मृदु फलफूलों से खिलती है क्यारी ।
सिंचाले अरे ज्ञान से भर के प्याला, ऐ तारण गुरू पंथ तेरा प्यारा ॥टेक॥

ऐ अब तो सुनो "मुक्तिश्री" कुछ विचारो, गई सो गई अब न उसको चितारो।
ऐसा तारण गुरू पंथ तेरा प्यारा आडम्बरों से कितना किया है निराला ॥

☼

भजन

अब जगा दे आतमज्ञान, हटे अज्ञान, तारण गुरु आके ।
अब जाना है उस धाम. लौटूं न जाके ॥
चौरासी फिर कर आये हैं, हम व्याकुल हो घबड़ाए हैं ।
भूले को मार्ग बता दे तारण गुरु आके ।
अब जाना है उस धाम लौटूं न जाके ॥
सब पर ही विपदा आई, सर्वत्र उदासी छाई ।
अब निज दर्श दिखा दो, तारण गुरु आके ।
अब जाना है उस धाम, लौटूं न जाके ॥
करुणानिधि दीनदयाला, सब ही के हो प्रतिपाला ।
बिलखत के आंसू रुका दो तारण गुरु आके ।
अब जाना है उस धाम, लौटूं न जाके ॥
भव्यों को सन्मार्ग लगाया, अब मेरा नम्बर आया ।
वह ज्ञान की ज्योति जगा दो, तारण गुरु आके ।
अब जाना है उस धाम, लौटूं न जाके ॥
वीर मना के नन्ददुलारे, गुरु तारण तरण हमारे ।
टापू पर [illegible] तारण गुरु आके ।
अब जाना है उस धाम लौटूं न जाके ॥
भक्ति-रस अमृत पाले, गुरु-वचन हृदय में रख ले ।

ए "मुक्तिश्री" गुरु चरण पड़ी हूँ आके ।
अब जाना है उस धाम, लौटूं न आके ॥
अब जगादे आतमज्ञान, हटे अज्ञान तारण गुरु आके ।
अब जाना है उस धाम, लौटूं न आके ॥

❂

प्रभाती

आतम परमातम पद गर्भित, सिद्धस्वरूप हम ज्ञानी ।
अलख निरंजन, सर्व कर्म भंजन, सत्यरमण गुणखानी ॥
शास्त्रपठन से होकर वक्ता, खूब खिरत है वाणी ।
स्व-पर निश्चय भेद करत है, वह पंडित है ज्ञानी ॥
आतम परमातम पद गर्भित, सिद्धस्वरूप हम ज्ञानी ॥ टेक ॥

चार दान नित करत शक्ति सम, मान गनें निज हानी ।
दाता वही कहा जाता है, पर का बने सन्मानी ॥
आतम परमातम पद गर्भित सिद्धस्वरूप हम ज्ञानी ॥ टेक ॥

रण में विजय पाने से प्राणी, वीर नहीं हो जाता है ।
इन्द्रियें जीत विजय करने से, शूर-वीर बन जानी ॥
आतम परमातम पद गर्भित, सिद्धस्वरूप हम ज्ञानी ॥ टेक ॥

पांच ज्ञान की ज्ञाता होकर, अपनी निधि ना जानी ।
"मुक्तिश्री" अनुपम ज्ञान से वैसी बुद्धि है हानि ॥
आतम परमातम पद गर्भित, सिद्ध स्वरूप हम ज्ञानी ।
अलख निरंजन, सर्व कर्म भंजन, सत्यरमण गुणखानी ॥

❂

गौरी भजन (संध्या कालीन)

झुक झुक शीश नवाऊँ, अब जिनवाणी को नित प्रति ध्याऊँ ।
तत्त्वज्ञान को यही लखावे निश्चय से परिचय पाऊँ ॥
अब जिनवाणी को नित प्रति ध्याऊँ ॥

सम्यक् दर्शन-ज्ञान-चरण-तप, यह आराधन ध्याऊँ ।
अब जिनवाणी को नित प्रति ध्याऊँ ॥

स्व-स्वरूप में स्थिर होजा, आपा में अपने ध्याऊँ ।
अब जिनवाणी को नित प्रति ध्याऊँ ॥

पर विभाव कौ कर अभाव अब, रत्नत्रय चमकाऊँ ।
अब जिनवाणी को नित प्रति ध्याऊँ ॥

बने पारखी, परख करें अब, मिथ्यातम को हटाऊँ ।
अब जिनवाणी को नित प्रति ध्याऊँ ॥

जिनवाणी की शरण ग्रहण कर, भव-भव फन्द छुड़ाऊं ।
"मुक्तिश्री" भव भव में भूली, अब मोक्ष महा पद चाहूँ ॥
अब जिनवाणी को नित प्रति ध्याऊँ ॥

☼

होरी

आतम अजर निराली मेरी, ज्ञानानंद विहारी लाल ।
ज्ञानानंद विहार देखो, महज्ञानंद विहारी लाल ॥
अरे जब आतम रमनों पर महकाती, मधु हो सुगंध सुहाती ।
आतम छाड़ उसे न आती लाज ॥
आतम अजर निराली मेरी ज्ञानानंद विहारी लाल ॥ टेक ॥

अरे सप्त तत्त्व का मथन करत है, छहों द्रव्य रुचि ठानी ।
चेतन स्वयं लखो श्रद्धानी लाल ॥
आतम अजब निराली मेरी ज्ञानानंद विहारी लाल ॥ टेक ॥

अरे पर वस्तु को हेय समझले, ज्ञेय समझ जिनवाणी ।
आतम होऊ भेदविज्ञानी लाल, होऊ भेदविज्ञानी लाल ॥
अरे आतम अगम्य गम्य नहिं इनको, अलख लखो केवलज्ञानी ।
आतम अपने में आप समानी लाल ॥
आतम अजब निराली मेरी, ज्ञानानंद विहारी लाल ॥ टेक ॥

अरे "मुक्तिश्री" सम्यक्त्व निधि चाहे, गहले तारण गुरु की वाणी ।
सखी बनो श्रद्धानी लाल ॥
आतम अजब निराली मेरी, ज्ञानानंद विहारी लाल ।
ज्ञानानंद विहारी देखो, सहजानंद विहारी लाल ॥

सर्वज्ञ-वाणी

हे सरस्वती सर्वज्ञ वाणी, तुझे नमस्कार है ।
जिसके हृदय में रम गई, भवदधि से पार है ॥
युक्ति सर्वज्ञ वाणी, त्रिभुवन में सार है ।
ध्रुव सत्य अचल अनन्त पूर्ण अविकार है ॥
हे सरस्वती सर्वज्ञ वाणी, तुझे नमस्कार है ।
जिसके हृदय में रम गई, भवदधि से पार है ॥
समता-सलिल से पूर्ण है, जिनराज वाणी ।
दोनों भुवन प्रकाशनी, अन्धकार नाशनी ॥

दिन गया, बाद को रात चली आती है ।
बस इसी चक्र में उमर चली जाती है ॥
यह कजा सभी के सिर पर मँडराती है ।
नहिं बचे कोई इक दिन सबको खाती है ॥
आतम की सुन लो बात यह क्या कहता है ?
यह गया वक्त फिर नहीं हाथ आता है ।

तू किसका करता मान, जगाता ख्याती ।
अपने का कर कुछ ध्यान, उमर तेरी है जाती ॥
यह झूठा सब ससार, झूठी सब यह ख्याती ।
छिन में लुट जाता राज, आँख मुँद जाती ॥
ए "मुक्तिश्री" कर ख्याल, घड़ी शुभ जाती ।
मानव तन गौरव मान, फेर नहीं पाती ॥
आतम की सुनलो बात, यह क्या कहता है ?
यह गया वक्त फिर नहीं हाथ आता है ॥

☼

भजन

मेरी आतम प्यारी भटक न जाय, दुनियां से निराली भटक न जाय

मोह की काली घटा मारग भुला देती यहां ।
ज्ञान का दीपक जलाकर, मार्ग दिखला दे यहां ॥
विवेक का पहरा लगा दो, कोई आने न पाय ।
मेरी आतम प्यारी भटक न जाय, दुनियां से निराली भटक न जाय

आत्मा बे-हाल है औषधि कराना चाहिये।
उस बिचारी को दवा हमको बनाना चाहिये॥
सत् गुरु पाके हृदय से भुलाया न जाय।
मेरी आतम प्यारी भटक न जाय, दुनियां से निराली भटक न जाय॥

भेद अरु विज्ञान बूटी की जरूरत है इसे।
समरस के रस में घोल कर अमृत पिलाना है इसे॥
आनन्द मन्दिर भरा है मगन हो जाय।
मेरी आतम प्यारी भटक न जाय, दुनियां से निराली भटक न जाय।

काया से चेतन कहे, काया! सुनो यह बात।
क्या अब चलेंगे हम यहाँ से, तुम चलोगी क्या साथ?
मेरी तेरी सखाई, तजी नहीं जाय।
मेरी आतम प्यारी भटक न जाय, दुनियां से निराली भटक न जाय॥

काया ने उत्तर दिया, चेतन सुनो ऐ बावरे।
ना कभी जाती रही, ना अब चलूंगी साथ रे॥
उत्तर सुन के चेतन, खड़ा खड़ा पछिताय।
मेरी आतम प्यारी भटक न जाय, दुनियां से निराली भटक न जाय।

लाली खोजन मैं चली, लाली कहीं दिखती नहीं।
और लाली मेरे पास है जो खोलकर देखी नहीं॥
भूल मेरी है मुझसे कही नहीं जाय।
मेरी आतम प्यारी भटक न जाय, दुनियां से निराली भटक न जाय॥

जो गई सो गई "मुक्तिश्री" पीछे की तो छोड़ दो।
अब नहीं गफलत में सोओ, आगे की दृढ़ सोच लो॥
आयु जाती, चली जाती है, घड़ियां गिनी नहीं जायें।
मेरी आतम प्यारी भटक न जाय, दुनियां से निराली भटक न जाय॥

आतम तेरी बलिहारी

तीनों लोक प्रकाशनहारी, आतम तेरी बलिहारी है ॥ टेक ॥

सावन जैसी झर्ड़ी लगाई, तीनों भुवन लखाई है ।
कर्म रणभूमि विजय कर दिखाई जय जय कार तुम्हारी है ॥
तीनों लोक प्रकाशनहारी, आतम तेरी बलिहारी है ॥ टेक ॥

अनंत ज्ञान की डोरी सम्हारी, केवलज्ञान समाई है ।
तूंने अगम्य गम्य कर लीनी, स्व-शक्ति भर पाई है ॥
तीनो लोक प्रकाशनहारी, आतम तेरी बलिहारी है ॥ टेक ॥

आतम ऋजु सरल चित धारी, विपुल में थाँह न आती है ।
तारण तरण स्वयं सुख दानी, विंद रमण में समानी है ॥
"मुक्तिश्री" कर भेद विज्ञान आतमबल बड़ी स्यानी है ।
तीनो लोक प्रकाशनहारी, आतम तेरी बलिहारी है ॥ टेक ॥

☼

शुद्ध स्वरूपी-आत्मा

ऐ परम शुद्ध स्वरूपी चिदानंद आतम ।
परमातम के पद को, तू पाकर ही रहना ॥ टेक ॥

परम पद का रुचियो, मनन कर स्व अनुभव ।
रमण शक्ति अपनी, बढ़ाकर ही रहना ॥
ऐ परम शुद्ध स्वरूपी चिदानंद आतम ।
परमातम के पद को तू पाकर ही रहना ॥ टेक ॥

जहाँ जिस समय में समाधी लगी हो।
निर्विकल्पता की सिद्धि बनाकर ही रहना॥
आतम ध्यान में भान, परमातम का होवे।
उस आनंदी की, सरिता बहाते ही रहना टेक॥

अगर योगों बल मिले, "मुक्तिश्री" तो।
न शक्ति छिपाना, शक्ति लगाकर ही रहना॥
ऐ परम शुद्ध स्वरूपी चिदानंद आतम।
परमातम के पद को तू पाकर ही रहना॥ टेक॥

☼

गुरु–वाणी

गुरु वाणी मिली है स्वीकार कर ले, हृदय में रख तू संभाल करले ॥टेक॥

सर्वज्ञ वाणी प्यारी है ये, ए नाथ अत्यन्त दयालु हुए।
अपने भेद अरु विज्ञान का करार कर ले, हृदय में रख तू संभाल कर ले ॥टेक॥

ये नरभव दुबारा मिलेगा नहीं, ये चमन फिर दुबारा खिलेगा नहीं।
अपने श्रद्धा सुमन से शृंगार कर ले॥
गुरु वाणी मिली है स्वीकार कर ले, हृदय में रख तू संभाल कर ले ॥टेक॥

ये नइया भंवर में आकर रुकी, अनादि निधन सो बनाए यहाँ।
ध्यान बल्ली लगाकर तू पार कर ले, माता जिनवाणी से प्रेम कर ले॥
गुरु वाणी मिली है स्वीकार कर ले, हृदय में रख तू संभाल कर ले। टेक।

आतम–परमातम का न सहारा लिया, तो बेकार है तू जिया न जिया।
अब सोचले समझले विचार करले॥
गुरु वाणी मिली है स्वीकार कर ले, हृदय में रख तू संभाल कर ले।। टेक॥

गर मिथ्यात्व का न किनारा किया, तो चारों गति का सहारा लिया।
न आनन्द की बगिया उजाड़ कर ले,सम्यक्त्व का अब तो प्रकाश कर ले ॥
गुरु वाणी मिली है स्वीकार कर ले, हृदय में रख तू संभाल कर ले। टेक॥

गुरु वाणी समझ कर जो चल देंगे, तो मारग को तय कर निकल जायेंगे।
"मुक्तिश्री" अवसर ए पाया, उद्धार कर ले ॥
गुरु वाणी मिली है स्वीकार कर ले, हृदय में रख तू संभाल कर ले ॥टेक॥

☼

गुरुवाणी–माहात्म्य

तारण गुरू तेरे शब्द समझ ना पाये हैं।
रयण लहर–लहर लहराय, उसी में समाये हैं ॥

शुद्धात्म रसिक रस–प्रेमी, उसी में रमाये हैं।
रयण लहर–लहर लहराय, उसी में समाये हैं ॥

अनन्तज्ञान गुणधारी, विगस लौ लगामे हैं।
रयण लहर–लहर लहराय, उसी में समाये हैं ॥

आनन्द सहज सुख करता, समाधि लगाये हैं।
रयण लहर–लहर लहराय, उसी में समाये हैं ॥

धन्य–धन्य श्रीवर के कंथा, हुलस गुण गाये हैं।
रयण लहर–लहर लहराय, उसी में समाये हैं ॥

श्री वीर श्री के नन्दन, परम सुख पाये हैं।
रयण लहर–लहर लहराय, उसी में समाये हैं ॥

"मुक्तिश्री" धन्य धन्य भाग्य हमारे, नंद आनंद रमाये हैं।
रयण लहर–लहर लहराय, उसी में समाये हैं ॥

परम वीतरागी आत्मा की वंदना

ये आनन्द स्वरूपी, परम वीतरागी करूं वंदना मैं सदा सिर झुकाती ।टेक।

है शुद्धात्म जैसा, प्रभु स्वरूप, अनन्त ज्ञान गुणों में, परम दर्श पाती ।
ये आनन्द स्वरूपी, परम वीतरागी, करूं वंदना मैं सदा सिर झुकाती ॥

रहे त्याग शुचि, करूं व्रत बारह, ऐसा योग मिल के करूं भाव शुद्धि ।
ये आनन्द स्वरूपी, परम वीतरागी, करूं वंदना मैं सदा सिर झुकाती ॥

आत्मानुरागी बनकर चलूं मोक्ष मारग रागादि में रुचि न सपने दिखाती ।
ये आनन्द स्वरूपी परम वीतरागी, करूं वंदना मैं सदा सिर झुकाती ॥

बनूं आतम रमणी, करूं ब्रह्मचर्या, हां आतम-परमातम मिला दर्श करती ।
ये आनन्द स्वरूपी परम वीतरागी, करूं वंदना मैं सदा सिर झुकाती ॥

न रहे भाव रंजन करूं त्याग विभ्रम, आकिंचन भाव रख के करूं मोह भंजन ।
ये आनन्द स्वरूपी, परम वीतरागी, करूं वंदना मैं सदा सिर झुकाती ॥

मेरा भोग उपभोग हो आतम मगन्ता, सच्चिदानन्द चरणों में मस्तक नवाऊँ ।
ये आनन्द स्वरूपी परम वीतरागी, करूं वंदना मैं सदा सिर झुकाती ॥

अब गहती है "मुक्तिश्री" जिनवाणी शरण सिर नवाती ।
गुरु तारण पद कमलों में, वन्दन हमारा है, वन्दना हमारा ॥
ये आनन्द स्वरूपी, परम वीतरागी, करूं वंदना मैं सदा सिर झुकाती ।टेक।

०

भजन

आतम का है रूप निराला, अब सके जो आनंदधारा ॥ टेक ॥

मार मोह को तू पल में, आनन्द अनुभूति कर पावे ।
[illegible]

रयण स्वभावी कललंकृति, भानु उद्योत प्रकाशनहारी ।
निर्विकल्प उज्ज्वल कर अपनी, ममल भाव संभालनहारा ॥टेक॥

नन्दननन्दनी ऊर्ध स्वभावी, कर्मों के आवर्ण हटा ले ।
गगन समान परम निर्मल है, रत्नत्रय है खेवनहारा ॥ टेक ॥

जिनवाणी सदेन्श सुनाती, वीतराग वाणी प्रगटाती ।
भय शंका तज हो निशल्यता, वीर भाव आराधनहारा ॥ टेक ॥

"मुक्तिश्री" अटकी तब भटकी भूल कबूल अबै भी करती ।
भूल मिटै अब मूल से जावे, साहस एक संभालनहारा ॥ टेक ॥
आतम है रूप निराला, जान सके सो जाननहारा ॥

☼

प्रभाती

क्या सोता उठ जाग सवेरा, प्रभु सुमरण की वेरा रे ।
प्रभु सुमरण की वेरा प्रभु जी गुरु सुमरण की वेरा रे ॥ टेक ॥

प्रभु बिन नहीं कोई है अपना, ढूंढा जग बहु तेरा रे ।
आन देव हम या भव सेये, कारज सरा न मेरा रे ॥ टेक ॥
या माया ने सब जग ठगियो, ठग लिया लोग घनेरा रे ।
जो पाया सो ही ठग खाया, रावण से बहुतेरा रे ॥ टेक ॥
रूप-सरूप देख मत भूलै, चलत न लागै वेरा रे ।
सिर पर काल लिये सठ ठाणो, छिन छिन करत है फेरा रे ॥टेक॥
पूजा-दान गुरू की सेवा, नित उठ करो सवेरा रे ।
यामें भूल चूक मत कीजे, कूच मुकामी डेरा रे ॥ टेक ॥
क्या सोता उठ जाग सवेरा, प्रभु सुमरण की वेरा रे ।
प्रभु सुमरण की वेरा रे, गुरु सुमरण की वेरा रे ॥ टेक ॥

२४	२३	शशिहाव	ससहाव
४१	१	ओंकर	ओंकार
४९	१०	संशाक	संसार
५१	१९	शंकाद्य	शंकादि
५९	१	न्याय	न्यान
७३	१४	चौसद्ध	चौसंघ
८०	७	दिदिया	दिढियो
८८	१८	श्री सुपारस	नाथ सुपारस
१३१	१०	सुघ सुधी	सुख सुधी
१३१	१४	षाय	पाय
१६०	५	तुझसे	तोसे
१९३	१०	विसनन सेये	सेये कुविसन
२०५	६	धन्ध	धन्य
२०५	६	ऋतु ध्यान	ऋतुमें ध्याव
२१४	१४	जल्लूं	जलूं
२१४	१८	शील	शील
२१५	१४	ललिये	लहिये
२२५	१३	स्थिरति...	स्थितिर...
२३४	३	वमल	विमल
२३४	१४	स्वम्भू	स्वयभू
२३७	२	मिद्धन	सिद्ध
२७४	५	शकर	शूकर
२८६	८	णुद्ध	शुद्ध
२९८	६	सोह्	सोऽह्
२९९	१८	मोई	सोई
२९९	१४	जेन पूरणो	श्रेण पूरो
३३८	९	कि नशे	[illegible]

गर मिथ्यात्व का न किनारा किया, तो चारों गति का सहारा लिया।
न आनन्द की बगिया उजाड़ कर ले, सम्यक्त्व का अब तो प्रकाश कर ले ॥
गुरु वाणी मिली है स्वीकार कर ले, हृदय में रख तू संभाल कर ले। टेक॥

गुरु वाणी समझ कर जो चल देंगे, तो मारग को तय कर निकल जायेंगे।
"मुक्तिश्री" अवसर ए पाया, उद्धार कर ले ॥
गुरु वाणी मिली है स्वीकार कर ले, हृदय में रख तू संभाल कर ले ॥टेक॥

☼

गुरुवाणी–माहात्म्य

तारण गुरू तेरे शब्द समझ ना पाये हैं।
रयण लहर–लहर लहराय, उसी में समाये हैं ॥

शुद्धातम रसिक रस–प्रेमी, उसी में रमाये हैं।
रयण लहर–लहर लहराय, उसी में समाये हैं ॥

अनन्तज्ञान गुणधारी, विगस लौ लगाये हैं।
रयण लहर–लहर लहराय, उसी में समाये हैं ॥

आनन्द सहज सुख करता, समाधि लगाये हैं।
रयण लहर–लहर लहराय, उसी में समाये हैं ॥

धन्य–धन्य थोंवर के कंथा, हुलस गुण गाये हैं।
रयण लहर–लहर लहराय, उसी में समाये हैं ॥

श्री गार श्री के नन्दन, परम सुख पाये हैं।
रयण लहर–लहर लहराय, उसी में समाये हैं ॥

"मुक्तिश्री" धन्य धन्य भाग्य हमारे, नंद आनंद रमाये हैं।
रयण लहर–लहर लहराय, उसी में समाये हैं ॥

परम वीतरागी आत्मा की वंदना

ये आनन्द स्वरूपी, परम वीतरागी करूं वंदना मैं सदा सिर झुकाती ।।टेक।।

है शुद्धात्म जैसा, प्रभु स्वरुप, अनन्त ज्ञान गुणों में, परम दर्श पावी ।
ये आनन्द स्वरूपी, परम वीतरागी, करूं वंदना मैं सदा सिर झुकाती ।।

रहे त्याग वृत्ति, करूँ व्रत बारह, ऐसा योग मिल के करूं भाव शुद्धि ।
ये आनन्द स्वरूपी, परम वीतरागी, करूं वंदना मैं सदा सिर झुकाती ।।

आत्मानुरागी बनकर चलूं मोक्ष मारग रागादि में रुचि न सपने दिखाती ।
ये आनन्द स्वरूपी परम वीतरागी, करूं वंदना मैं सदा सिर झुकाती ।।

बनूं आतम रमणी, करूं ब्रह्मचर्या, हो आतम-परमातम मिला दर्श करती ।
ये आनन्द स्वरूपी परम वीतरागी, करूं वंदना मैं सदा सिर झुकाती ।।

न रहे भाव रंजन करूँ त्याग विभ्रम, आकिंचन भाव रख के करूं मोह भंजन ।
ये आनन्द स्वरूपी, परम वीतरागी, करूँ वंदना मैं सदा सिर झुकाती ।।

मेरा भोग उपभोग हो आतम मगन्ती, सच्चिदानन्द चरणों में मस्तक नवाती ।
ये आनन्द स्वरूपी परम वीतरागी, करूं वंदना मैं सदा सिर झुकाती ।।

अब गहती है "मुक्तिश्री" जिनवाणी चरण सिर नवाती ।
गुरु तारण पद कमलों में, वन्दन हमारी है, वन्दना हमारी ।।
ये आनन्द स्वरूपी, परम वीतरागी, करूं वंदना मैं सदा सिर झुकाती ।टेक।

O

भजन

आतम का है रूप निराला, ज्ञान मई जो आनन्दधारा ।। टेक ।।

ज्ञान बोध को तू प्रगटा ले, आनन्द अनुभूति तब पाले ।
ज्ञान चेतना का पतवारी, परमहंस सदानन्दधारा ।। टेक ।।

रयण स्वभावी कललंकृति, भानु उद्योत प्रकाशनहारी ।
निर्विकल्प उज्ज्वल कर अपनी, ममल भाव संभालनहारा ॥टेक॥

नन्दननन्दनी ऊर्ध स्वभावी, कर्मों के आवर्ण हटा ले ।
गगन समान परम निर्मल है, रत्नत्रय है खेवनहारा ॥ टेक ॥

जिनवाणी सदेन्श सुनाती, वीतराग वाणी प्रगटाती ।
भय शंका तज हो निशल्यता, वीर भाव आराधनहारा ॥ टेक ॥

"मुक्तिश्री" अटकी तब भटकी भूल कबूल अबै भी करती ।
भूल मिटै अब मूल से जावे, साहस एक संभालनहारा ॥ टेक ॥
आतम है रूप निराला, जान सके सो जाननहारा ॥

☼

प्रभाती

क्या सोता उठ जाग सवेरा, प्रभु सुमरण की वेरा रे ।
प्रभु सुमरण की वेरा प्रभु जी गुरु सुमरण की वेरा रे ॥ टेक ॥

प्रभु बिन नहीं कोई है अपना, ढूंढ़ा जग बहु तेरा रे ।
आन देव हम या मन सेवे, कारज सरा न मेरा रे ॥ टेक ॥
या माया ने सब जग ठगियो, ठग लिया लोग घनेरा रे ।
जो पाया सो ही ठग खाया, रावण से बहुतेरा रे ॥ टेक ॥
रूप-सरूप देख मत भूलै, चलत न लागे बेरा रे ।
सिर पर काल लिये मठ ठाणो, छिन छिन करत है फेरा रे ॥टेक॥
पूजा-दान गुरु की सेवा, नित उठ करो सवेरा रे ।
पाके भूल चूक मत कीजे, कूच मुकामी डेरा रे ॥ टेक ॥
क्या सोता उठ जाग सवेरा, प्रभु सुमरण की वेरा रे ।
प्रभु सुमरण की वेरा रे, गुरु सुमरण की वेरा रे ॥ टेक ॥

२४	२३	शशिहाव	ससहाव
४१	१	ओंकर	ओंकार
४९	१०	संशाक	संसार
५१	१९	शंकाद्य	शंकादि
५९	१	न्याय	न्यान
७३	१४	चौसद्घ	चौसंघ
८०	७	दिदिया	दिढ़ियो
८८	१८	श्री सुपारस	नाथ सुपारस
१३१	१०	सुघ सुवी	सुख सुधी
१३१	१४	षाय	पाय
१६०	५	तुझसे	तोसे
१९३	१०	विसनन सेये	सेये कुविसन
२०५	६	धन्घ	धन्य
२०५	६	ऋतु ध्यान	ऋतुमें ध्यान
२१४	१४	जल्लू	जलूं
२१४	१८	शील	शील
२१५	१४	ललिये	लहिये
२२५	१३	स्थिरति...	स्थितिर...
२३४	३	वमल	विमल
२३४	१४	स्वम्भू	स्वयभू
२३७	२	मिद्धन	सिद्ध
२७४	५	शकर	शूकर
२८६	८	णुद्ध	शुद्ध
२९८	६	सीह	सोऽह
२९९	१४	मोई	सोई
२९९	१४	जैन प्रणो	श्रेण पुरो
३६८	९	कि [illegible]	[illegible]

उत्तम कुल यह श्रावक को, फिर मिलना नहि भाय रे।
दास भवानो जा कहत है, चेतो चेतन राय रे ॥

○

卐 दादरा-२ 卐

भव जन मन मे ल्याव रे, जिनवाणी सुमर लो ॥टेक॥
लाख चौरासी जिया योनि मे, भटकत जन मन साव रे।
कठिन कठिन करि नर भो पायो, खोवत वृथा गमाव रे।
ज्ञान ध्यान दान तुम कर लो, उत्तम कुल तुम पायो रे।
सेवक जनकी अरज बीनती, कैसे करि पार लगाव रे ॥

○

卐 दादरा-३ 卐

मगन भये मगलकारी आज, आनन्द भये मंगलकारी ॥टेक॥
सोलह स्वर्ग तीन लोक लख, गावत सकल समाजी।
वीण मृदग तार सारंगी और झञ्झ ढप वाजी।
हरष हरष प्रभु को छवि निरखत, नाचत है सुख साजी।
सेवक सुमन दोही कर जोडे, मगन करो महाराज जी ॥

ॐ ब्रह्मचारी ज्ञानानंदकृत दर्शन ॐ

अति पुण्य उदय मम आया, प्रभु तुमरा दर्शन पाया ।
अब तक तुमको विन जाने, दुख पाये निज गुण हाने ।।
पाये अनंते दुख अबतक, जगत को निज जानकर ।
सर्वज्ञभापित जगत हितकर, धर्म नहिं पहिचान कर ।।
भवबंधकारक सुखप्रहारक, विपय में सुख मानकर ।
निजपर-विवेचक ज्ञानमय, सुखनिधि-सुधा नहिं पान कर ।। १।।

तव पद मम उरमें आये, लखि कुमति विमोह पलाये ।
निज ज्ञान-कला उर जागी, रुचि पूर्ण स्वहित में लागी ।।
रुचि लग हित में आत्मके, सतसंग में अब मन लगा ।
मन में हुई अब भावना, तब भक्ति में जाऊँ रंगा ।।
प्रिय वचन की हो टेव, गुणिगुणगान में हो चित पगै ।
शुभ शास्त्र का नित हो मनन, मन दोपवादनतें भगै ।।२।।

कब समता उरमें लाकर, द्वादश अनुप्रेक्षा भाकर ।
ममतामय भूत भगाकर, मुनिव्रत धारूं वन जाकर ।।
धरकर दिगंबर रूप कब, अठवीस गुण पालन करूं ।
रिषह सह सदा, शुभ धर्म दश धारन करूं ।।
तपूं द्वादशविधि सुखद, नित बंध आस्रव परिहरूं ।
अरु रोकि नूतन कर्म संचित, कर्मरिपुको निर्जरूं ।।३।।

कब धन्य सुअवसर पाऊं, जब निजमें ही रमजाऊं ।
कर्तादिक भेद मिटाऊं, रागादिक दूर भगाऊं ।।
कर दूर रागादिक निरंतर, आत्मको निर्मल करूं ।
बल ज्ञान दर्शन सुख अतुल, लहि चरित क्षायिक आचरूं ।।

आनंदकंद जिनेंद्र बन, उपदेश को नित उच्चरूं ।
आवें 'अमर' कब सुखद दिन जब दुखद भवसागर तरूं ॥४॥

卐

卐 श्री दर्शन-पचीसी 卐

तुम निरखत मुझको मिली, मेरी संपति आज ।
कहाँ चक्रवर्ति संपदा, कहाँ स्वर्ग साम्राज ॥१॥
तुम वंदत जिनदेव जी, नित नव मंगल होय ।
विघ्न कोटि ततछिन टरें, लहहिं सुजस सब लोय ॥२॥
तुम जाने बिन नाथजी, एक स्वासके माँहि ।
जन्म मरण अठदश किये, साता पाई नाहिं ॥३॥
अन्य देव पूजत लहे, दुःख नरक के बीच ।
भूख प्यास पशुगति सही, करचो निरादर नीच ॥४॥
नाम उचारत सुख लहै, दर्शनसों अघ जाय ।
पूजत पावै देव पद, ऐसे हैं जिनराय ॥५॥
वंदन हूं जिनराज मैं, धर उर समता भाव ।
तनधनजन—जग जालतें, धर विरागता भाव ॥६॥
सुनो अरज हे नाथ जी, त्रिभुवन के आधार ।
दुष्टकर्म का नाश कर, वेगि करो उद्धार ॥७॥
जाचत हूं मैं आपसों, मेरे जियके माहिं ।
राग दोष की कल्पना, क्यों हू उपजै नाहिं ॥८॥
अति अद्भुत प्रभुता लखी, वीतरागता माहिं ।
विमुख होहिं ते दुख लहैं, सन्मुख सुखी लखाहिं ॥९॥
कलमल कोटिक नहिं रहे, निरखत ही जिनदेव ।
ज्यों रवि ऊगत जगत में, हरै तिमिर स्वयमेव ॥१०॥

परमाणू पुद्गलतणी, परमातम संजोग ।
भई पूज्य सब लोक में, हरे जन्म का रोग ॥११॥
कोटि जन्म में कर्म जो, बांधे हुते अनंत ।
ते तुम छवी विलोकितें, छिन में होहै अंत ॥१२॥
आन नृपति किरपा करें, तब कछु दे धन धान ।
तुम प्रभु अपनें भक्त को, करल्यो आप समान ॥१३॥
यंत्र मंत्र मणि औषधी, विष हर राखत प्रान ।
त्यो जिनछवि सब भ्रम हरै, करै सर्व परधान ॥१४॥
त्रिभुवनपति हो ताहितें, छत्र विराजें तीन ।
अमरा नाग नरेशपद, रहै चरन आधीन ॥१५॥
भवि निरखत भव आपनें, तुव भामंडल बीच ।
भ्रम मेटै समता गहै, नाहि लहै गति नीच ॥१६॥
दोइ ओर ढोरत अमर, चौसठ चमर सफेद ।
निरखत भविजन का हरै, भव अनेक का खेद ॥१७॥
तरु अशोक तुव हरत हैं, भवि जीवन का शोक ।
आकुलता कुल मेटि कें, करै निराकुल लोक ॥१८॥
अंतर बाहिर परिगहन, त्यागा सकल समाज ।
सिंहासन पर रहत हैं, अंतरीक्ष जिनराज ॥१९॥
जीत भई रिपु मोहतें, यश सूचत है तासु ।
देव दुंदुभिन के सदा, बाजे बजें अकाश ॥२०॥
बिन अक्षर इच्छारहित, रुचिर दिव्यध्वनि होय ।
सुरनरपशु समझें सबै, संशय रहै न कोय ॥२१॥
बरसत सुरतरु के कुसुम, गुंजत अलि चहुँ ओर ।
फैलत सुजस सुवासना, हरषत भवि सब ठौर ॥२२॥

समुद बाग अरु रोग अहि, अर्गल बंध संग्राम।
विघ्न विषम सब ही टरै, सुमरत ही जिन नाम ॥२३॥
सिरोपाल चंडाल पुनि, अंजन भीलकुमार।
हाथी हरि अरि सब तरे, आज हमारी वार ॥२४॥
'बुधजन' यह विनती करै, हाथ जोड़ शिर नाय।
जबलो शिव नहिं होय तुव, भक्ति हृदय अधिकाय ॥२५॥

卐

卐 विनयपाठ-दोहावली 卐

इहि विधि ठाड़ो होय के, प्रथम पढै जो पाठ।
धन्य जिनेश्वर देव तुम, नाशे कर्म जु आठ ॥१॥
अनन्त चतुष्टय के धनी, तुमही हो सिरताज।
मुक्ति–वधू के कंथ तुम, तीन भुवन के राज ॥२॥
तिहुँ जगकी पीडाहरन, भवदधि शोषणहार।
ज्ञायक हो तुम विश्व के, शिवसुख के करतार ॥३॥
हरता अघअंधियार के, करता धर्मप्रकाश।
थिरतापद दातार हो, धरता निजगुण रास ॥४॥
धर्मामृत उर जलधिसों, ज्ञान—भानु तुम रूप।
तुमरे चरण सरोज को, नावत तिहु जग भूप ॥५॥
मैं वन्दौं जिनदेव को, कर अति निरमल भाव।
कर्मबंध के छेदने, और न कछु उपाव ॥६॥
भविजन को भव कूप तें, तुम ही काढनहार।
दीनदयाल अनाथपति, आतम गुण भंडार ॥७॥
चिदानन्द निर्मल कियो, धोय कर्मरज मैल।
सरल करी या जगत में, भविजन को शिवगैल ॥८॥

तुम पद पंकज पूजतें, विघ्न रोग टर जाय ।
शत्रु मित्रता कों धरें, विष निरविषता थाय ॥९॥
चक्री खगधर इंद्रपद, मिलें आपतें आप ।
अनुक्रम कर शिवपद लहैं, नेम सकल हनि पाप ॥१०॥
तुम बिन मैं व्याकुल भयो, जैसे जलबिन मीन ।
जन्म जरा मेरी हरो, करो मोहि स्वाधीन ॥११॥
पतित बहुत पावन किये, गिनती कौन करेव ।
अंजन से तारे कुधी, जय जय जय जिनदेव ॥१२॥
थकी नाव भवदधिविषैं, तुम प्रभु पार करेय ।
खेवटिया तुम हो प्रभू, जय जय जय जिनदेव ॥१३॥
राग सहित जग मे रुल्यो, मिले सरागी देव ।
वीतराग भेटयो अबै, मेटो राग कुटेव ॥१४॥
कित निगोद कित नारकी, कित तिर्यंच अज्ञान ।
आज धन्य मानुष भयो, पायो जिनवर थान ॥१५॥
तुम को पूजें सुरपती, अहिपति नरपति देव ।
धन्य भाग्य मेरो भयो, करन लग्यो तुम सेव ॥१६॥
अशरण के तुम शरण हो, निराधार आधार ।
मैं डूबत भवसिंधु में खेओ लगाओ पार ॥१७॥
इंद्रादिक गणपति थके, कर विनती भगवान ।
अपनो विरद निहारिके, कीजे आप समान ॥१८॥
तुमरी नेक सुदृष्टितें, जग उतरत है पार ।
हाहा डूब्यो जात हो, नेक निहार निकार ॥१९॥
जो मैं कहहूं और सों, तो न मिटै उरझार ।
मेरी तो तोसों बनी, तातें करौं पुकार ॥२०॥

वंदों पाचौं परमगुरु, सुरगुरु वंदत जास ।
विघनहरन मंगलकरन, पूरन परम प्रकाश ॥२१॥
चौवीसों जिनपद नमों, नमो शारदा माय ।
शिवमग–साधक साधु नमि, रच्यो पाठ सुखदाय ॥२२॥

卐

卐 जयमाला 卐

देवशास्त्रगुरु रतन शुभ, तीन रतन करतार ।
भिन्न भिन्न कहुं आरती, अल्प सुगुण विस्तार ।

पद्धरिछंद ।

कर्मनकी त्रेसठ प्रकृति नाशि, जीते अष्टादश दोषराशि ।
जे परम सुगुण हैं अनंत धीर, कहवतके छयालिस गुण गंभीर ॥२॥
शुभ समवसरन शोभा अपार, शतइंद्र नमत कर सीस धार ।
देवाधिदेव अरहंत देव, वंदों मनवचनकरि सु सेव ॥३॥
जिनकी धुनि ह्वै ओंकाररूप, निर अक्षरमय महिमा अनूप ।
दश अष्ट महाभाषा समेत, लघुभाषा सात शतक सुचेत ॥४॥
सो स्याद्वादमय सप्तभंग, गणधर गूंथे बारह सु अंग ।
रवि शशि न हरै सो तम हराय, सो शास्त्र नमों बहु प्रीति ल्याय ॥५॥
गुरु आचारज उवझाय साध, तन नगन रतनत्रयनिधि अगाध ।
संसार देह वैराग धार, निरवांछि तपैं शिवपद निहार ॥६॥
गुन छत्तिस पच्चिस आठबीस, भवतारन तरन जिहाज ईस ।
गुन की महिमा बरनी न जाय, गुरु नाम जपों मनवचनकाय ॥७॥
सोरठा—कीजे शक्ति प्रमान, शक्ति बिना सरधा धरै ।
द्यानत सरधावान, अजर अमरपद भोगवै ॥

॥ आशीर्वाद ॥

अविनाशी अविकार परमरसधाम हो ।
समाधान सर्वज्ञ सहज अभिराम हो ॥
शुद्धबोध अविरुद्ध अनादि अनंत हो ।
जगतशिरोमणि सिद्ध सदा जयवंत हो ॥१॥

ध्यान-अगनिकर कर्म—कलंक सबै दहे,
नित्य निरंजन देव सरूपी ह्वै रहे ।
ज्ञायक के आकार ममत्व निवारिकें,
सो परमातम सिद्ध नमूं सिर नायकें ॥२॥

दोहा-अविचल ज्ञानप्रकाशतें, गुण अनंत की खान ।
ध्यान धरै सो पाइये, परम सिद्ध भगवान ॥३॥

तीसरा अध्याय

देवशास्त्रगुरु—स्तुति-संग्रह ।

॥ नामावलि स्तुति ॥

जय जिनंद सुखकंद नमस्ते, जय जिनंद जितफंद नमस्ते ।
जय जिनंद वरबोध नमस्ते, जय जिनद जितक्रोध नमस्ते ॥१॥
पापतापहर इंदु नमस्ते, अर्हवरनजुत बिंदु नमस्ते ।
शिष्टाचार विशिष्ट नमस्ते, इष्ट मिष्ट उत्कृष्ट नमस्ते ॥२॥
पर्म धर्म वर शर्म नमस्ते, मर्म भर्म घन घर्म नमस्ते ।
दृग विशाल वरभाल नमस्ते, हृददयाल गुनमाल नमस्ते ॥३॥

शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध नमस्ते, रिद्धिसिद्धि वरवृद्धि नमस्ते ।
वीतराग विज्ञान नमस्ते, चिद्विलास धृत ध्यान नमस्ते ॥४॥
स्वच्छगुणांबुधि रत्न नमस्ते, सत्वहितंकर यत्न नमस्ते ।
कुनयकरी मृगराज नमस्ते, मिथ्याखग वर बाज नमस्ते ॥५॥
भव्यभवोदधिपार नमस्ते, शर्मामृत शिवसार नमस्ते ।
दरश ज्ञान सुखवीर्य नमस्ते, चतुराननधरवीर्य नमस्ते ॥६॥
हरि हर ब्रह्मा विष्णु नमस्ते, मोहमर्दमनुजिष्णु नमस्ते ।
महादान मह भोग नमस्ते, महाज्ञान महजोग नमस्ते ॥७॥
महाउग्रतपसूर नमस्ते, महा मौनगुणभूरि नमस्ते ।
धरमचक्रि शिवसूर नमस्ते, भवसमुद्रशतसेतुनमस्ते ।
विद्या ईश मुनीश नमस्ते ॥८॥
इंद्रादिक नुत शीस नमस्ते, जय रत्नत्रयराय नमस्ते ।
सकल जीव सुखदाय नमस्ते ॥९॥
असरणशरणसहाय नमस्ते । भव्यसुपथ लगाय नमस्ते ।
निराकार साकार नमस्ते एकानेव अधार नमस्ते ॥१०॥
लोकालोकविलोक नमस्ते । त्रिधा सर्वगुणयोक नमस्ते ।
सल्लादल्लदल्लमल्ल नमस्ते । कल्लमल्लजितछल्ल नमस्ते ॥११॥
भुक्तिमुक्तिदातार नमस्ते । उक्तिसुक्तिशृंगार नमस्ते ।
गुण अनंत भगवंत नमस्ते । जै जै जै जयवंत नमस्ते ।१२।

卐 शारदाष्टक 卐

नमो केवल नमो केवल रूप भगवान ।
मुख ओंकार धुनि सुनि अर्थ गणधर विचारै ।
रचि रचि आगम उपदिसै भविक जीव संशय निवारै ।

सो सत्यारथ शारदा, तासु भक्ति उर आन ।
छंद भुजंगप्रयात में, अष्टक कहौं बखान ॥१॥

जिनादेश जाता जिनेंद्रा विख्याता ।
विशुद्ध प्रबुद्धा नमों लोकमाता ॥
दुराचार दुर्नेहरा शंकरानी ।
नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी ॥२॥

सुधाधर्मसंसाधनी धर्मशाला ।
क्षुधातापनिर्नाशिनी मेघमाला ॥
महामोहविध्वंसनी मोक्षदानी ॥ नमो देवि० ॥३॥

अखै वृक्षशाखा व्यतीताभिलाषा ।
कथा संस्कृता प्राकृता देशभाषा ॥
चिदानंद भूपाल की राजधानी ॥ नमो० ॥४॥

समाधानरूपा अनूपा अछुद्रा ।
अनेकांतधा स्यादवादांकमुद्रा ॥
त्रिधा सप्तधा द्वादशांगी बखानी ॥ नमो देवि० ॥५॥

अकोपा अमाना अदंभा अलोभा ।
श्रुतज्ञानरूपी मतिज्ञान शोभा ॥
महापावनी भावना भव्यमानी । नमो देवि० ॥६॥